RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 59 अंक : 10 प्रकाशन तिथि : 25 सितम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 अक्टूबर 2022

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

कितने जगमग दीपक जलते, आँख नहीं तो व्यर्थ जले हैं
करने आए कर न सके तो, जीवन तरुवर व्यर्थ फले हैं

जय नारायण व्यास यूनिवर्सिटी जोधपुर से छात्रसंघ अध्यक्ष पद पर अरविंद सिंह भाटी (अवाय) को विजयी होने पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं।

मोती सिंह
छात्र प्रतिनिधि
JNVU

अरविंद सिंह भाटी
छात्रसंघ अध्यक्ष
JNVU

रविन्द्र सिंह
पूर्व छात्रसंघ अध्यक्ष
JNVU

-: शुभेच्छु :-

राजूसिंह काठाड़ी, चंद्रपालसिंह मांडाणी, विक्रमसिंह आकोली
विक्रमसिंह मिर्गानेनी, जोरावरसिंह पसवाला, जोगराजसिंह काठा
पन्ने सिंह रेवाड़ा, सुरेंद्र सिंह कूलाची, मनोहर सिंह दुजार
रूप सिंह शेरगढ़, उदय सिह भाड़ली, रेवन्त सिंह जोगा
लीलू सिंह सुल्ताना, जबर सिंह भिंयाड़, खेत सिंह भादरिया
प्रेम सिंह रेवाड़ा जेतमाल, देवी सिंह जानसिह बेरी
भरत सिंह जंजीला, हरि सिह बोडवा,
लाधु सिह रेवाड़ा

संघशक्ति

4 अक्टूबर, 2022

वर्ष : 58 अंक : 10

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवान सिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ चैनसिंह बैठवास	06
☞ क्षत्रिय की पहचान	✍ स्व. श्री सूरतसिंह कालवा	08
☞ आर्य-अनार्य	✍ गिरधारी सिंह डोभाड़ा	14
☞ छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को	✍ स्वामी श्री जगदात्मानन्द	17
☞ पृथ्वीराज चौहान	✍ श्री विरेन्द्र सिंह मांडण	22
☞ यदुवंशी करौली का इतिहास	✍ राव शिवराजपाल सिंह इनायती	24
☞ महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा	✍ भँवरसिंह मांडासी	26
☞ विचार सरिता (चतुसप्तति लहरी)	✍ विचारक	28
☞ संघ की सामूहिक संस्कारमयी मनावैज्ञानिक....	✍ गगन कँवर आकोड़ा	29
☞ हृदय में सत्कार रखो	✍ भागीरथ सिंह लूणोल	31
☞ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

वीर दुर्गादास राठौड़ जयन्ती :

वीर दुर्गादास राठौड़ एक आदर्श क्षत्रिय थे। उनका जन्म श्रावण शुक्ल चतुर्दशी संवत 1695 तदनुसार 13 अगस्त सन् 1638 को हुआ था। इस वर्ष उनकी 384वीं जयन्ती 11 अगस्त से लेकर 14 अगस्त तक विभिन्न स्थानों पर बड़े आदर भाव के साथ मनाई गई।

राव रणमल के पुत्र थे करण, उन्हीं के वंशज आसकरण जी के पुत्र थे दुर्गादास राठौड़। दुर्गादास जी का पूरा जीवन चरित्र ऐसा रहा जिसके प्रति आदर भाव उत्पन्न होता है और उनकी जयन्ती मनाना प्रेरणादायी बन जाता है। 17 वर्ष की आयु से लेकर 80 वर्ष की आयु तक वे सक्रिय तो रहे ही पर उनकी सक्रियता तत्कालीन आवश्यकता के अनुकूल बनी रही। अपनी उस सक्रियता में उन्होंने क्षात्रत्व के सिद्धान्तों को कभी उपेक्षित नहीं रहने दिया। कर्तव्य पालन में त्याग और बलिदान की हर आवश्यकता को पूरा मान दिया। महाराजा जसवंतसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् महाराजा के परिवार की सुरक्षा और उनके राज्य की प्राप्ति के असंभव से लगने वाले कार्य को दुर्गादास जी ने बड़े धैर्यपूर्वक निरंतर संघर्ष के साथ पूरा किया। साधन हीन होते हुए भी, सैन्य शक्ति के अभाव में रहते हुए भी, उन्होंने उस समय के प्रबल और क्रूर बादशाह औरंगजेब से पूरा मुकाबला किया। युद्ध, छापामार, संधि, कूटनैतिक चाल, जहाँ जो उचित रही वही नीति अपना कर औरंगजेब को मजबूर कर दिया और अपने ऊपर आए दायित्व को पूरा किया।

राजस्थान और गुजरात में अनेक स्थानों पर श्री क्षत्रिय युवक संघ व श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन के तत्वावधान में वीर वर की जयन्ती मनाई गई। उज्जैन, हिसार, दिल्ली में भी संघ के तत्वावधान में कार्यक्रम आयोजित हुए। इसके अलावा भी कई संस्थाओं द्वारा जयन्ती अनेक स्थानों पर मनाई गई।

किसान सम्मेलन :

भारतीय संस्कृति में विभिन्न जातियों में भी परस्पर पारिवारिक प्रकार का सम्बन्ध रहता आया था। परन्तु आज की स्थिति उसके बिल्कुल विपरीत है। व्यक्तिगत और राजनैतिक स्वार्थों के कारण आज जातियों को परस्पर लड़ाये जाने जैसी स्थिति पैदा कर दी गई है। इस प्रकार के पैदा किए गये संघर्ष पूरे राष्ट्र में विखण्डन प्रक्रिया के कारण बने हैं। विभिन्न राजनैतिक दलों के वक्ता हों अथवा विभिन्न सभाओं के प्रमुख, अधिकतर के बोल विष घुले ही हो रहे हैं। यह परिस्थिति गाँव से लेकर राष्ट्र तक सभी के विकास में बाधक है। स्थिति गंभीर है, इस समस्या का समाधान आसान नहीं है, लेकिन जो करणीय कर्म है, वह किया ही जाना चाहिए। इसलिए ग्राम स्तर से बात करें तो कृषि ऐसा कार्य है जिससे गाँव के अधिकांश लोग किसी न किसी प्रकार जुड़े रहते हैं। इसलिए यह उचित लगा कि किसान सम्मेलन किए जाएँ और क्योंकि सभी समाजों के लोग इससे जुड़े हैं अत: सब मिलकर परस्पर संवाद शुरू करें। श्री क्षत्रिय युवक संघ अपने प्रशिक्षण कार्यक्रम के अतिरिक्त अब सर्व–सामाजिक दायित्व भी निभाये, इसके लिये श्री प्रताप फाउण्डेशन किसान सम्मेलन जैसे कार्य कर रहा है। 22 अगस्त को बीकानेर में किसान सम्मेलन आयोजित किया गया। कार्यक्रम को सर्वसमाज का सहयोग मिला।

शिविर : शिविरों की शृंखला निरंतर चल रही है। माँग बहुत है, पर एक साथ अनेक जगह शिविर होने पर प्रशिक्षण का स्तर प्रभावित न हो इसके लिए कुछ रोक भी लगानी पड़ी है। इस बार बालिका शिविर की माँग ने खूब जोर पकड़ा है, बालिकाओं की संख्या भी शिविरों में खूब रह रही है।

अन्य कार्यक्रम : संघ के सभी संभागों में कार्यक्रम चल रहे हैं। कार्य योजना बैठकें की जा रही हैं। स्नेह मिलन आयोजित किए जा रहे हैं। सम्पर्क यात्राएँ की जा रही हैं। श्री प्रताप फाउण्डेशन का चिंतन शिविर राजसमंद में सम्पन्न हुआ। छात्र वर्ग में हाल ही में विजित छात्रों के लिए प्रताप फाउण्डेशन ने जयपुर में एक बैठक रखी। श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन की केन्द्रीय टीम ने जयपुर में अपने कार्य की समीक्षा की तथा भविष्य में होने वाले कार्यक्रमों के लिए समितियाँ गठित कर कार्य विभाजन किया। ●

चलता रहे मेरा संघ

{उच्च प्रशिक्षण शिविर आलोक आश्रम बाड़मेर में 22 मई, 2022 को माननीय संरक्षक श्री भगवानसिंह जी रोलसाहबसर द्वारा प्रदत प्रभात संदेश}

भगवान के अस्तित्व के बारे में दो मान्यताएँ हैं। भगवान के अस्तित्व को जो स्वीकार करते हैं, उनको आस्तिक कहते हैं। जो भगवान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते उनको नास्तिक कहा जाता है। आस्तिक लोग पूरे संसार में जो उपासना करते हैं वे भी दो प्रकार की बताई गई है। एक निर्गुण साधना, एक सगुण साधना। निर्गुण साधना का सामान्य अर्थ है कि वे बिना मूर्ति के, बिना किसी प्रकार के प्रतीक के, हृदय में परमेश्वर का ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। इनको निर्गुण उपासक कहते हैं। जो ऐसा नहीं कर पाते, वे प्रतीक का सहारा लेते हैं। प्रतीक चाहे मूर्ति हो, कोई चिन्ह हो, कोई पुस्तक हो। नास्तिक नाम से शायद कोई है नहीं फिर भी विचारधाराओं के अनुसार इस प्रकार की कुछ मान्यताएँ बनी हुई हैं। निर्गुण उपासक भी नहीं के बराबर मिलते हैं। सभी प्रतीक उपासक हैं, सगुण उपासक हैं।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में हम भी उपासना करते हैं। हमारी उपासना दो प्रकार की है। प्रथम तो हम भी मूर्ति, चिन्ह, पुस्तक आदि को लेकर चलते हैं और हमारी दूसरी साधना, उपासना जो है, वह है अंत:करण की साधना। यह साधना बाहर दिखाई नहीं देती यह आंतरिक साधना है जिसमें अपना स्वनिर्माण करने के लिए अपना अंतरावलोकन करते रहते हैं। यह स्वयं एक साधना है। आपको बताया गया होगा, या बताया जाएगा कि चाहे खेल हो, चाहे घट चर्चा हो, चाहे प्रवचन हो, इन सब में ही हमको यह सारी शिक्षा मिलती है।

इस्लाम में मूर्ति पूजा वर्जित है, लेकिन वे भी प्रतीक पूजा करते हैं। हम भगवान की मूर्ति बनाते हैं, पूजा करते हैं, वे लोग मस्जिद की उपासना करते हैं, वह प्रतीक ही है। इसी तरह जैन धर्म में भी कुछ लोग पट्टी बाँध कर, तो कुछ लोग खुले मुँह पर अंतर की साधना करते अवश्य हैं। आस्तिक अवश्य हैं। जो सगुण की उपासना करते हैं वे अपने गुरु का ध्यान करते हैं, जो गुरु मार्ग बताते हैं, उस पर चलते हैं। सिख धर्म में गुरु ग्रन्थ साहब को प्रतीक में रखकर उपासना करते हैं। हिन्दुओं में तो अनेक पंथ हैं। औपचारिकताओं के रूप में मस्तक पर तीन आडी लकीरें खींचते हैं, कोई खड़ी लकीरें खींचते हैं। कोई शिवलिंग को पूजते हैं तो कोई माताजी को पूजते हैं। कोई राम तो कोई कृष्ण को पूजते हैं। सभी उपासक हैं, सभी आस्तिक हैं, सभी सगुण उपासक हैं।

श्री क्षत्रिय युवक संघ में हमें यहाँ प्रकारान्तर से ये सभी बातें बताई जाती रही हैं, बताई जा रही है, बताई जाएगी। खेल खेलते समय भी हम इतने सावधान रहें कि हमारी साधना भंग न हो जाए। यदि खेल में हमें ना बोलने की आज्ञा दी गई है और हम बोलते हैं तो हमारी साधना भंग हो जाती है। खेल खेलते समय आप आउट हो जाते हैं पर किसी तरह से चकमा देकर के बैठते नहीं हैं तो साधना भंग हो जाती है। अपनी पूरी सावधानी रखकर दिए गये आदेश का पालन करते रहते हैं, अपनी वृतियों को नियंत्रित करते हैं तो हमारी स्वनिर्माण की आंतरिक उपासना ही हम कर रहे हैं।

हमारे उद्देश्य के लिए, हमने क्षात्रधर्म की साधना के लिए प्रतीक माना केसरिया ध्वज को। यह फर-फर-फर-फर फहराता रहता है। चौबीस घंटे, दिन रात फहराता रहता है। हमें याद दिलाता है कि तुम सो रहे

(शेष पृष्ठ 21 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

''**क्षतात्किल त्रायत इति क्षत्रिय:।**'' अपने बल से और पुरुषार्थ से स्व की रक्षा करता हुआ दूसरों को क्षय से बचाने वाला क्षत्रिय है। संसार जब-जब भटका है, दिशाहीन बना है, तब संसार को मार्ग दिखाने वाला, उत्तरदायित्वों का बोध कराने वाला, सभी को सम्भालने वाला, सभी को साथ लेकर चलने वाला, स्वयं क्षत्रिय ही मार्ग से भटक गया, असहाय व पंगु बनकर रह गया, तो पूरी की पूरी मानवता संतप्त, त्रस्त व पीड़ित हो गयी। मानवता की इस दयनीय व पतनोन्मुखी दशा ने पूज्य श्री तनसिंहजी को व्यथित कर दिया। मानवता की गिरती दशा ने पूज्य श्री को ही क्यों व्यथित किया? यह सोच का विषय है, अन्वेषण का विषय है। इस बात को समझने के लिए भगवान श्रीकृष्ण को समझना होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा-''जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने आपको साकार रूप में प्रकट करता हूँ।'' श्री कृष्ण ने **परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुण्कृताम्।** अर्थात्- सज्जनों की रक्षा और पाप कर्म करने वालों का विनाश कर धर्म **संस्थापनार्थाय** धर्म की स्थापना के लिए अवतार लिया और अर्जुन को माध्यम बनाकर समस्त संसार को संदेश दिया कि धर्म की स्थापना के लिए दुष्टों का नाश करना ही कर्तव्य पालन है। अर्जुन निकटतम सम्बन्धों की दुहाई देकर युद्ध से हटना चाहता था। भगवान श्री कृष्ण ने उन्हें समझाते हुए कहा-हे अर्जुन! जिन सम्बन्धों को तुम महत्त्व देते हो और वे तुम्हारे निकटतम भी हैं, पर वे दुष्टता पर उतर आये हैं, अब वे मानवता के शत्रु हैं। उन्हें मारने में हिचकना नहीं चाहिए। कंस श्रीकृष्ण का मामा था, और अपनी माँ का भाई था, पर वह दुष्टता पर उतर आया तो भगवान को उन्हें मारने के लिए अवतार लेना पड़ा। अब श्री कृष्ण की जगह पूज्य श्री तनसिंहजी को रख कर देखें! संतप्त, त्रस्त व पीड़ित मानवता को देखकर पूज्य श्री का व्यथित होना और कहना-

''मैं निर्झर हूँ पर्वत से बह गहरा नीचे तक आया हूँ।''

उस अविनाशी को धरती पर क्यों जन्म लेना पड़ा, हमारे मध्य क्यों आना पड़ा? इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी स्वयं ने ही बताया-

''पगली धरती के आँचल को मैं तीर्थ बनाने आया हूँ।''

यह धरती माता कभी निर्मल थी, पवित्र थी, पाक थी, जो अब कलुषित हो गयी। इस पर अत्याचार बढ गये, अराजकता फैल गयी, चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। संसार के बिगड़े हालात को सुधारने के लिये अवतार होते हैं। धरती को पाप मुक्त करने, धर्म की स्थापना करने और अधर्म का नाश करने के लिए अजन्मा को धरती पर जन्म लेकर हम लोगों के बीच आना पड़ता है।

समाज की दु:ख की हालत के प्रति हृदय में उपजी पीड़ा ने ही पूज्य श्री तनसिंहजी को क्षात्र शक्ति के अभ्युदय के लिए प्रेरित किया। क्षात्र शक्ति का अभ्युदय क्षत्रिय समाज के लिए ही नहीं, अपितु जन मानस ही क्या, प्राणी मात्र की आवश्यकता है। समाज के प्रति पूज्य श्री के हृदय में उपजी पीड़ा का निवारण पथभ्रष्ट व धर्मच्च्युत समाज को कर्तव्य के सात्विक मार्ग पर पुन: प्रतिष्ठित करने से ही हो सकता था। समाज को कर्तव्य के सात्विक मार्ग पर प्रतिष्ठित करने के लिए तमोगुण से आक्रान्त क्षत्रिय वृत्ति को सतोगुण की ओर उन्मुख करना होगा और यह काम तमोगुण से आक्रान्त सुप्त समाज को जागृत करने से ही हो सकता था, इसलिए सुप्त क्षत्रिय समाज को जागृत करना अब पूज्य श्री का ध्येय बन गया। अपने ध्येय को सभी का ध्येय बनाने के लिए उन्होंने श्री क्षत्रिय युवक

संघ की स्थापना की। पूज्य श्री ने संघ के स्वयंसेवकों को बताया कि समाज जागरण ही समाज की सेवा है। जाति यानी समाज माँ भगवती का मूर्त रूप है, इसलिए समाज की सेवा ही माँ भगवती की आराधना है, ईश्वर की पूजा है। दुर्गा सप्तशती में कहा है–

''या देवि सर्वभूतेषु जाति रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमोः नमः।''

यह जाति यानी समाज स्वरूपा देवी ही पूज्य श्री की आराध्या थी। समाज को माँ भगवती स्वरूप समझ कर समाज सेवा में उन्होंने अपने आपको सर्वात्मना समर्पित कर दिया था। उनकी राजनीति, उनका धनार्जन, उनका कुटुम्ब पालन और उनका सर्वस्व केवल अपने समाज के निमित्त था।

क्षत्रिय समाज का उज्ज्वल भविष्य पूज्य श्री तनसिंहजी का सपना था जो अब संकल्प बन गया। इसलिए उनकी नजर में समाज सेवा से इतर कुछ भी नहीं था। समाज सेवा ही उनका परम लक्ष्य बन चुका था। वे अनन्य भाव से समाज सेवा में लीन थे, इसलिए परिवार पर विशेष ध्यान नहीं दे पा रहे थे। जिनको बड़े काम करने होते हैं, वे एक परिवार के होकर नहीं रह सकते। इस कारण उन्होंने अपने परिवार के लिये साधन सम्पत्ति जुटाना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपने परिवार की उपेक्षा तो नहीं की, पर परिवार के लिए विशेष कुछ नहीं किया।

जब पूज्य श्री तनसिंहजी समाज जागरण की यात्रा पर निकले तो परिवार की ओर से, रिश्तेदारों की ओर से विरोध होना शुरू हो गया। उन्होंने पूज्य श्री से आग्रह किया कि अपने परिवार पर ध्यान दो, अपने परिवार का सोचो, पराये दुःख में मत पड़ो। इस पर पूज्य श्री ने प्रत्युत्तर में कहा –

''मेरे उज्ज्वल भविष्य! मेरा परिवार यह कहता है कि तुम्हारा हमारे प्रति उत्तरदायित्व है। मैं भी यह बात मानता हूँ और उनके लिए जीवन जुटाता हूँ, किन्तु भोग और ऐश्वर्य नहीं जुटा पाता, इसीलिये कि जीना इनका अधिकार है, न कि ऐश्वर्य। मेरे परिवार को मैंने भिखारी बनाया है केवल तेरे लिए।

''मेरे कई हितैषियों ने जिनमें मेरा ससुर भी शामिल है, मुझे सलाह दी कि पराए दुःख में परेशानी न लेकर घर को समृद्ध बनाना चाहिए। मैं मानता हूँ कि उनकी इस सलाह में मेरे हित की भावना जरूर है, पर उसमें भी मेरा हित नहीं है, क्योंकि मेरा हित केवल तुम्हारी प्राप्ति में है, इसलिए सभी पूर्वजनों की सलाह को मैंने निर्ममता से ठुकरा दिया-केवल तेरे लिए!''

पूज्य श्री ने बीस वर्ष की अवस्था में ही समाज जागरण का बीड़ा उठाया। समाज लोगों से बना है। इसलिए लोगों में सोयी हुई क्षत्रिय वृत्ति को वे जगाने में लग गये। सुप्त क्षात्र शक्ति जो भीतर निस्तेज पड़ी थी, उसे बाहर निकाल कर लोगों को उसका असहास कराना समाज जागरण के लिए आवश्यक हो गया था। क्षत्रिय वृति जगने पर ही लोगों को अहसास होगा कि समाज उनके लिए नहीं है, अपितु वे समाज के लिये हैं। यह भाव जगने पर ही समाज के प्रति सात्विक त्याग की भावना जगेगी। सात्विक त्याग की भावना जगने पर ही समाज के प्रति पूज्य भाव पैदा होगा और यह पूज्य भाव ही समाज सेवा में लगायेगा। समाज के प्रति हमारा क्या सोच है और क्या होना चाहिए, इस सम्बन्ध में पूज्य श्री ने हमें बताया–

''सामुदायिकता और सामाजिकता को अभी हम पूज्य भाव से देखने के आदी नहीं हुए हैं। हम समाज के प्रति उत्थान के भाव से ही त्याग करते हैं। उसे दीन-हीन और कृपाकांक्षी मानते हैं। पता नहीं वह दिन कब आयेगा, जब हम समाज की सेवा उसे बड़ा मानकर करेंगे। उसके लिए त्याग करते हुए हम यही सोचेंगे कि हमने हमारे आराध्य देव के चरणों में अपने ही जीवन का नेवैद्य चढाया है। दृष्टिकोण के इस परिवर्तन के बिना बड़ी से बड़ी उछल-कूद भी त्याग की श्रेणी में नहीं आती और न ही वह सार्थक हो सकती। कृपणता का त्याग दृष्टिकोण के परिवर्तन में ही है और यदि विश्वात्मा के साथ हमारा सम्बन्ध जुड़ जाता है, तो व्यष्टि, समष्टि और परमेष्टि के ताने-बाने के साथ हमारी साधना का उज्ज्वलतम रूप निखर आयेगा और यही होगा हमारी ध्येय-साधना की अन्तिम मंजिल।''

(क्रमशः)

क्षत्रिय की पहचान

– स्व. सूरतसिंह कालवा

दशा :

जिनके दर्शनों से सब पाप मिट जाते थे, वे होते थे क्षत्रिय। हाँ, वे क्षत्रिय ही थे जिनके अलौकिक दर्शनों से सब पाप मिट जाते थे। वे धर्म का सदा मान रखते थे और धर्म उनका मान रखता था। वे क्षत्रिय ही थे जो कभी अपने लिए नहीं जिये, संसार के उपकार के लिए ही उनका जन्म होता था। जिनकी अपूर्व सुगन्ध से इन्द्रिय-मधुपगण भी हिल उठते थे, लोक जिनका भक्त था और जो लोक हितैषी थे, वे क्षत्रिय ही थे। सन्मार्ग पर चलते हुए विघ्न से कभी न डरने वाले क्षत्रिय ही थे। वे क्षत्रिय ही थे जो अपने लिए दूसरों के हित कभी नहीं हरते थे, स्वयं मर कर भी दूसरों के जीने के अधिकार की रक्षा करते थे। वे क्षत्रिय ही थे जो सदा मोह-बन्धन से मुक्त, स्वच्छन्द और स्वाधीन थे। और हाँ, वे क्षत्रिय ही थे जिन्होंने इस जग को जीता, कभी वेद-विद्या की शक्ति से; कभी ज्ञान, ध्यान और भक्ति से, कभी सुशासन के द्वारा तो कभी न डूबा उनका सितारा। युगों तक इस धरती पर अपनी शक्ति, सामर्थ्य और शौर्य से राज करने वाले क्षत्रिय ही थे। तमोगुण से जब भी ठनी लड़ाई, तो दुखी जन के खातिर कृपाण उठाई, वे क्षत्रिय ही थे। अपने भुजबल, मनोबल और आत्मबल से तीनों लोकों में जिन्होंने अपनी पहचान बनाई, वे क्षत्रिय ही थे। मगर?

मगर क्या हुआ उन्हें ढह गए किनारे,
सभी के दिलों में पड़ी है दरारें।
टूटी है तारें सो गए तराने,
खड़े रहने को भी रहे ना सहारे।।

आज क्षत्रिय की पहचान खो गई, तीनों लोक में अपनी पहचान बनाने वाला क्षत्रिय आज अपनी पहचान को तरस रहा है। क्यों? क्या किसी का शाप लगा है क्षत्रिय को? किसका शाप लगा? किसने दिया शाप और क्यों दिया? अकारण तो कोई किसी को शाप नहीं देता। कहीं कोई चूक हो जाती है, कोई अकरणीय कर्म हो जाता है तो अधोगति के मार्ग खुल जाते हैं और पतन शुरू हो जाता है। हमारे पूर्वजों ने क्या अपने रक्त से मिट्टी को सानकर इसका निर्माण नहीं किया था, क्या उन्होंने अपने सर्वस्व की आहुति देकर इनके सुरक्षा-यज्ञों का आयोजन नहीं किया था और क्या उन्होंने स्वप्न में भी सोचा था कि उनकी कायम (स्थापित) की गई क्षत्रिय की पहचान को उनकी सन्तान हम, उनके स्मृति चिन्हों से कुछ भी प्रेरणा ग्रहण न करके केवल तटस्थ और निर्लिप्त भाव से अपने पतन को निहारते रहकर अपनी पहचान को खोते चले जाएँगे? अपने त्याग, तप और बलिदान से धरती पर युगों तक अपना राज्य-स्थापित रखने वाला क्षत्रिय आज भूल रहा है कि उसका इतिहास अद्वितीय है, उसकी परम्परा महान है, वह महान और श्रेष्ठ संस्कृति तथा गौरवमय अतीत का धनी है। क्षत्रिय को यह रूप, यह आकार और गौरव देने वाला क्षात्रत्व पवित्र है। क्षत्रिय सृष्टि का ज्योति पुंज रहा है।

किन्तु, ज्योति पुंज! आज क्या हो गया, क्यों हो गया? आज जुगनू ज्योति पुंज की हँसी उड़ा रहे हैं। क्षत्रिय को आज चाहे जब छेड़ा जा सकता है, चाहे जो कहा जा सकता है। आज क्षत्रिय काल के सशक्त हाथों का खिलौना बनता जा रहा है। क्षात्रत्व ही नहीं बचेगा तो पीछे क्या बचेगा? पीछे तो धूल बचेगी, धूल को कोई माथे से नहीं लगाता, धूल तो पैरों तले रौंदी जाती है। तभी तो कल जो त्याग, उत्सर्ग और बलिदान की

सीढियाँ बने थे, वे आज दूध की मक्खी हो गए। अपमान की वास्तविक पराकाष्ठा कब होती है? जब वह पहली बार सहन किया जाता है। जिसने जिस किसी भी कारण से एक बार अपना और अपनी कौम का अपमान सहन कर लिया, उसने अपने अस्तित्व के लिए जीवन-मरण की चिता स्वयं तैयार कर ली। भविष्य में वह पराक्रम के कितने ही पर्वत क्यों न खड़े करे, संसार की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं रहता। अज्ञानवश क्षत्रिय आज अनजाने बन्धनों में बँध गया है। आज जो मार्ग क्षत्रिय ने पकड़ा है, वह बीहड़ और खतरनाक है। पतन का मार्ग सहज होता है, उन्नति के मार्ग में अनगिनत बाधाएँ हैं, बाधाओं से डर कर जो मार्ग में ठहर जाते हैं, दुनिया उन्हें कायर और बुज़दिल समझती है।

बीत गया सो बीत गया, जो हुआ सो हुआ। सुखद और दुखद दोनों स्मृतियों को भूलकर वर्तमान पर दृष्टि रखने की आवश्यकता है। अतीत के चिन्तन का मन पर बोझ बना रहा तो अपना वर्तमान गंवा बैठेंगे। वर्तमान को खोना नहीं है, वर्तमान पर दृष्टि रखते हुए अपने गौरवशाली अतीत, परम्परा और इतिहास के गर्भ से निर्मित होने वाला भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल होगा। अपने भीतर के आत्मविश्वास को पुष्ट करने की आवश्यकता है। अज्ञानी, कुंठित और प्रवाह पतित लोगों की नकल करते हुए हल्के- फुल्के मनोरंजन में, महफिलों में समय व्यर्थ गंवाया तो हमारी क्षात्र परम्परा का नाम तक शेष नहीं बचेगा। कोई भी कभी क्षत्रिय की गाथा नहीं लिखेगा।

काल अखण्ड है, जीवन असीम है, संसार में केवल एक ही कल्पना चिरंतन और शाश्वत होती है। जग में केवल एक ही सद्‌गुण श्रेष्ठ है, संसार आज तक केवल एक ही बिन्दू के आगे झुका है, वह सद्‌गुण है- सामर्थ्य। सामर्थ्य भुजाओं का, सामर्थ्य संगठन का, सामर्थ्य बुद्धि का भी और विवेक का भी सामर्थ्य शक्ति और भक्ति का भी तथा आत्मबल और परमात्मा पर अटल विश्वास का भी। काल का आदि और अंत दोनों ही नहीं है। काल अखण्ड है, जीवन असीम है। जिस जीवन को प्राप्त करना हमारे अधिकार में नहीं है, उस जीवन को आमोद-प्रमोद में व्यर्थ गंवाने का अधिकार भी हमको नहीं है। जीवन चाहते हैं तो जीतना होगा, अपने आपको जीतना होगा, अपनी आदतों, स्वभाव, व्यवहार और अपने आचरण को जीतना होगा।

क्षत्रिय की पहचान उसका सामाजिक चरित्र और समाज के लिए उसकी उपादेयता है। व्यष्टि का समष्टि में समावेश होना ही उसके जीवन की सार्थकता है। क्षत्रियों को जातीय धर्म के रूप में उनकी परम्परा से निश्चित सूक्ष्म चेतनाएँ प्राप्त हुई हैं। इन्हीं चेतनाओं का मूर्त रूप क्षात्रधर्म क्षत्रिय का स्वाभाविक धर्म, स्वधर्म है। क्षात्रधर्म के सिद्धान्त ही युगों से क्षत्रियों के कर्मों, उनकी चेष्टाओं और उनकी प्रवृतियों को नियंत्रित और गतिशील करते आए हैं। क्षात्रधर्म के सूक्ष्म सिद्धान्त भूषण-भूत होकर क्षत्रिय की गौरवमय संस्कृति क्षात्र-संस्कृति का निर्माण करते आए हैं।

अब यदि प्रकाश के स्रोत (क्षात्रधर्म के सिद्धान्त) को ढूंढकर उस तक पहाँचना है तो परिवर्तन तो होना चाहिए और जो परिवर्तन करना है वह केवल नीतिवश नहीं, बल्कि इसलिए करना है कि उसकी आज, वर्तमान में नितान्त आवश्यकता है। इस आवश्यकता को आज यदि क्षत्रिय स्वीकार करने को तैयार नहीं तो क्या क्षत्रिय अपमानित और दीन-हीन बनकर जीना स्वीकार करेंगे? नहीं, जीवित जाति तो वही है जो अपने पतन से शिक्षा लेकर पुनः उठने का प्रयास करे, संघर्ष करे, संघर्षरत रहे। क्षत्रिय के लिए क्षत्रिय के रूप में अपनी पहचान बनाए रखने का एकमात्र यही उपाय है, यही मार्ग है। क्षत्रियोचित्त गुणों और संस्कारों से ही क्षत्रिय की क्षत्रिय के रूप में पहचान बनी रह सकती है।

दिशा :

क्षत्रिय समाज के अनेक विद्वानों एवं चिन्तकों ने

अनेक अवसरों पर जो यह अनुभव किया है कि क्षत्रियों को केवल नाम से ही नहीं पहचाना जा सकता, क्योंकि ऐसा कोई तंत्र विकसित नहीं है। अत: इसके लिए सामाजिक केन्द्र को एक तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है।

क्या और कैसा हो ऐसा कोई तंत्र? और उस तंत्र को कौन विकसित करे? चिन्तकों और विचारकों को इस विषय पर ज्यादा कसरत करने की बजाए इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि मनुष्य के जातिगत गुणों को सुरक्षित रखने के लिए संस्कारों का महत्त्व है। माता-पिता, समाज, वातावरण, शिक्षा, वीर्यदोष, मानसिक दोष आदि के कारण उत्पन्न सन्तान में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं उनका शोधन संस्कार विधि से ही होता है। संस्कार विधि का पैतृक एवं वंशानुगत गुणों को सुरक्षित रखने एवं उनके उन्नयन के लिए विशेष महत्त्व होता है। संस्कारों के इस महत्त्व को भुलाकर ही हम (हमारा समाज) आज अधोगति की ओर उन्मुख हुए हैं और होते जा रहे हैं। अतएव हमारे मनीषियों द्वारा प्रचलित संस्कार प्रणाली को जीवित रखना होगा। जीवित है नहीं, उसे जीवित करना होगा।

वेदादि ग्रन्थों में संस्कारों का बड़ा महत्त्व बताया गया है। व्यक्ति को सामाजिक अधिकार प्राप्त करने के लिए संस्कृत ही नहीं सुसंस्कृत होना आवश्यक माना गया है। द्विज माता-पिता के शरीर से जन्म लेने के उपरान्त भी यदि बालक असंस्कृत या संस्कारहीन हो तो वह द्विज नहीं कहला सकता। द्विज शब्द का अर्थ है जिसका दो बार जन्म हो, पहला माता के गर्भ से, दूसरा संस्कार द्वारा। मानव शरीर मानो एक अपूर्ण चित्र है, जिसे कुशल कलाकार अपनी तुलिका से संस्कार रूपी अनेक रंग से सजाकर पूर्ण करता है। संस्कारों के अभाव में मनुष्य अपूर्ण है।

शबर ने संस्कार शब्द का अर्थ बताया है -

''संस्कारो नाम सभवति यस्मिनजाते पदार्थो भवति कस्य चिदर्थस्य।''

अर्थात् संस्कार वह है जिसके होने से कोई पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के लिए योग्य हो जाता है। तंत्रवार्तिक के अनुसार -

''योग्यतां चादधान्त: क्रिया: संस्कारा इत्युच्यन्ते''

अर्थात् संस्कार वे क्रियाएँ या रीतियाँ हैं, जो योग्यता प्रदान करती हैं। यह योग्यता दो प्रकार की होती है-

1. पाप मोचन से उत्पन्न योग्यता
2. नवीन गुणों से उत्पन्न योग्यता।

वीरमित्रोदय ने संस्कारों की परिभाषा इस प्रकार की है,-यह एक विलक्षण योग्यता है जो शास्त्र विहित क्रियाओं के करने से उत्पन्न होती है। यह योग्यता दो प्रकार की होती है-

1. जिसके द्वारा व्यक्ति अन्य क्रियाओं के योग्य हो जाता है और 2. दोष से मुक्त हो जाता है।

संस्कार :

बार-बार किसी कर्म को करने से मनुष्य की विशेष प्रकार की आदतें बन जाती हैं। यही आदतें बीज रूप में मन के गहरे तल पर जमा होती रहती हैं, जो मृत्यु के बाद भी मन के साथ ही अपने सूक्ष्म रूप में बनी रहती हैं और नया शरीर धारण करने पर अगले जन्म में उसी प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा बन जाती है। पूर्व जन्म, कुल मर्यादा, सुशिक्षा, सभ्यता, वातावरण, संगति आदि का मन पर पड़ने वाला प्रभाव संस्कार कहलाता है।

अंतहीन शृंखला :

ये संस्कार इस जन्म में और अगले प्रत्येक जन्म में संग्रहित (संचित) होते चले जाते हैं जिन्हें संचित कर्म कहा गया है। मनुष्य इन संचित कर्मों को अपने इस जीवन में भोग पाता है, जो इस जीवन में प्रेरणा का कार्य करता है। अच्छे-बुरे जैसे संस्कार होंगे, वैसे ही

अच्छे-बुरे कर्म मनुष्य करता है। इन कर्मों से फिर नये संस्कार बनते हैं। इस प्रकार संस्कारों की एक अटूट अंतहीन शृंखला बनती जाती है और इसी से व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। ये संस्कार किसी विशेष प्रकार के कर्म करने की प्रेरणा देते हैं, बलपूर्वक किसी कर्म को करने के लिए बाध्य नहीं करते। वर्तमान जीवन में शिक्षा से, वातावरण से, संगति से, स्वाध्याय से चिन्तन-मनन से, सत्संग, सद्भाव और सदपुरुषों के उपदेशों व स्वयं के दृढ संकल्प और निश्चय आदि से इनमें परिवर्तन व परिशोधन करके इन्हें श्रेष्ठ संस्कारों में बदला जा सकता है। यह मनुष्य के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है, क्योंकि यह क्षेत्र पुरुषार्थ का है। पूर्व जन्मों के संचित संस्कार जो वर्तमान जीवन में उदित होकर अपना प्रभाव दिखाते हैं, उसको 'प्रारब्ध' कहते हैं। वर्तमान जीवन में किए जाने वाले कर्मों को 'पुरुषार्थ' कहते हैं। प्रारब्ध से पुरुषार्थ सदैव प्रबल होता है। पुरुषार्थ से पूर्व जन्मों के अशुभ संस्कारों को परिवर्तित भी किया जा सकता है। पुरुषार्थ-हीन व्यक्ति इन पूर्व जन्मों के संस्कारों से बंधा रहता है, इसका मुख्य कारण है 'अज्ञान'। मनुष्य अज्ञानवश ही संसार में सभी प्रकार के कुकर्म का दुष्कर्म करता है और इन्हीं के फलस्वरूप वह दुख भोगता है।

कोई भी कर्म निष्फल नहीं जाता। कहा गया है- **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम'** अर्थात् किए गए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। **'ना भुक्तं क्षीयते कर्म'** अर्थात् बिना भोगे कोई कर्म समाप्त नहीं होता।

यद्यपि कर्म फलों में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु कर्म करने के प्रेरक संस्कारों में परिवर्तन करके नये शुभ कर्म किए जा सकते हैं और अशुभ कर्मों के संग्रह को नियंत्रित किया जा सकता है। प्रवृति ने जिसको जिस रूप में उत्पन्न किया है, उसी रूप में वे वस्तुएँ प्राकृत कहलाती हैं और मनुष्य द्वारा कांट-छाट होकर परिष्कृत या संशोधित होकर आने पर उसे संस्कृत कहा जाता है।

'संस्करणं गुणान्तराधानं संस्कार:'

अर्थात् शुभ गणों का आधान करना, मन पर पड़े हुए अशुभ सूक्ष्म प्रभावों को बदलना, उन्हें शुद्ध करना या परिष्कृत करना ही संस्कार कहलाता है। किसी दोषयुक्त वस्तु को दोषमुक्त करना अर्थात् जो कमी उसमें रह गई है उसे पूरा करना ही संस्कार कर्म है।

आवश्यकता :

प्रकृति ने अनेक प्रकार के अन्न-धान्य, फल-फूल, कन्द-मूल, आदि उत्पन्न किए मनुष्य उन्हें संस्कृत करके (कूट-पीस कर, घी आदि में तलकर या अन्य विधि से) सुन्दर सुस्वादु बना देता है। प्रकृति ने कपास, ऊन आदि दिए, मनुष्य उनके विविध संस्कार करके, विविध परिधान तैयार करके काम में लेता है। ये मनुष्य की संस्कारमयी भावना के उदाहरण हैं। यह भावना प्राकृत तथा ईश्वर प्रदत्त है। खान से निकला सोना उसी रूप में कीमती या उपयोगी नहीं होता। ताप, ताड़न, छेदन, भेदन की संस्कार प्रक्रिया से गुजर कर सोना शुद्ध और अमूल्य बनता है। खान से निकली मिट्टी एक विशेष प्रक्रिया से गुजरकर रंगीन, चमकीली, कीमती बर्तन या खिलौना बनती है। प्रकृति से प्राप्त वस्तुएँ विविध संस्कारों द्वारा सम्पन्न होकर ही पूर्णता को प्राप्त होती हैं। इन विविध संस्कारों का उद्देश्य है-

1. दोष मार्जन-दोष दूर करना, 2. गुणाधान-गुणों का समावेश, 3. हीनांगपूर्ति-अभाव की पूर्ति।

जब प्रकृति दत्त वस्तुएँ विविध संस्कारों द्वारा सम्पन्न होकर ही पूर्ण होती हैं तो मानव जैसा श्रेष्ठ प्राणी माता के गर्भ से ही विकसित मनुष्य के रूप में उत्पन्न हो, अर्थात् उसे किसी प्रकार से संस्कारित होने की आवश्यकता न हो, यह कैसे सम्भव हो सकता है। एक ही माता-पिता से उत्पन्न सन्तानें, एक ही वातावरण में

रखे जाने तथा एक ही प्रकार की शिक्षा के उपरान्त भी भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार क्यों करने लगते हैं? उनकी मनोदशा भिन्न प्रकार की क्यों हो जाती है? क्योंकि पूर्व के विभिन्न जन्मों में भिन्न वातावरण में पलने के कारण उनके मन में भिन्न संस्कार जमे रहते हैं, जो उपयुक्त वातावरण मिलने पर विकसित होते हैं, अन्यथा सुप्त पड़े रहते हैं किन्तु नष्ट नहीं होते। ये संस्कार ही मनुष्य को उसके वर्तमान जीवन में कर्म की ओर प्रवृत करते हैं। ये संस्कार शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के हो सकते हैं। इनमें अशुभ संस्कारों का परिशोधन करके, नये शुभ संस्कारों में ढाला जा सकता है।

मनुष्य की श्रेष्ठता को प्रकट करने के लिए उसकी मानसिकता में परिवर्तन करना आवश्यक है। इसके लिए केवल नैतिक उपदेशों या प्रवचनों से काम नहीं चलता। हमारे मनीषियों ने श्रेष्ठ मानवता के विकास के लिए सोलह संस्कारों वाली एक उत्तम विधि हमें दी है जिसमें भौतिक सुखों की लालसा की अपेक्षा मानसिक एवं आत्मिक उन्नति को ही श्रेष्ठ मानकर उसी के परिशोधन की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

शक्ति किसी भी प्रकार की हो, मूर्त या अमूर्त, उसका सदुपयोग करना व्यक्ति की मानसिकता पर निर्भर करता है। मानसिकता में परिवर्तन करने के लिए ही हमारे शास्त्रों में संस्कारों का विधान किया गया है।

महत्त्व :

मानव में मानवीयता (क्षत्रियों में क्षत्रियत्व) के विकास की प्रक्रिया उसके गर्भकाल से ही प्रारम्भ होती है। इस तथ्य की अनुभूति प्राचीनकाल में ही हो चुकी थी। वर्तमान में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी इस तथ्य को स्वीकारा गया है। किन्तु व्यवहारिक जीवन में तद्नुसार आचरण की प्रेरणा लगभग समाप्त हो चुकी है। व्यक्ति, कुटुम्ब और समाज मिलकर एक इकाई है। इनका अलग-अलग अस्तित्व मानना न तो तर्कसंगत है और न व्यवहारिक। इसी तथ्य की अनदेखी के कारण आज अनेक प्रकार की समस्याएँ हमारे पारिवारिक और सामाजिक जीवन को दूभर बना रही हैं।

व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना ही भ्रामक है। कुटुम्बों से ही समाज बनता है। बालकों को कुटुम्ब और समाज के साथ जोड़ने का दायित्व प्रथम माता-पिता का है तथा बाद में कुटुम्ब जनों का होता है। समाज तो है पर सामाजिक जीवन नदारद है। मानव न कभी अकेला रहा है, न कभी रहेगा। सामाजिकता (सामुहिकता) उसकी आवश्यकता है। इसी आवश्यकता ने समाज का निर्माण किया। सामाजिकता का आधार है सहयोगी भाव और सहयोगी भाव का आधार है सुसंस्कार। समाज के घटक कुटुम्ब में जन्मते हैं और जीवन समाज में ही व्यतीत करना होता है। कुटुम्ब का गठन होता है, विवाह द्वारा वैदिक संस्कार प्रणाली में मानव के नव-निर्माण की आधारशिला तैयार करना गर्भाधान संस्कार है। मानव का निर्माण होता है माता-पिता के रज-शुक्र से अर्थात् गर्भाधान प्रक्रिया से।

श्रेष्ठ व्यक्ति ही श्रेष्ठ समाज व श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है, व्यक्ति की श्रेष्ठता प्रथम आवश्यकता है, यही उसकी गरिमा है। इसलिए मनुष्य के जातिगत गुणों को सुरक्षित रखने के लिए संस्कारों का विशेष महत्त्व है।

संस्कारों के प्रकार :- वेद व्यास जी ने सोलह संस्कारों को मान्यता दी है। इन्हें दो भागों में विभक्त किया गया है-

(1) दोषमार्जन संस्कार :- ये आठ हैं- 1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन और 8. चूड़ा कर्म संस्कार।

इन संस्कारों को विधिपूर्वक करने से गर्भ के बीज का शोधन होता है, इसलिए इन्हें दोषमार्जन संस्कार कहा गया है। बालक में पूर्व जन्मों से कई प्रकार के धर्म एवं कर्म दोष आते हैं। इन संचित दोषों को दूर करने के

लिये इन संस्कारों को करने का विधान है। इन्हें शोधक संस्कार भी कहते हैं। ये संस्कार पिता द्वारा सम्पन्न कराए जाते हैं। इनसे गर्भ और बीज का दोष दूर होता है।

(2) गुणाधान संस्कार :– ये भी आठ हैं– 1. कर्णवेध, वेदारम्भ, 3. उपनय 4. समावर्तन, 5. विवाह, 6. आवस्थ्याधान, 7. संन्यास और 8. अन्तिम संस्कार।

गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक मनुष्य के जन्म, उसके संवर्धन और अवसान की समस्त प्रक्रियाएँ जब तक संस्कार के द्वारा शुद्ध और परिष्कृत नहीं हो जाती, तब तक जीवात्मा का न तो उचित परिष्कार होता है, न उसे वह सुख ही प्राप्त होता है जो वह वास्तव में प्राप्त करना चाहता है। यदि संस्कारित करने की विधि को हम पुनः जीवित कर लें तो हमारा भारतवर्ष पुन: संसार का विद्या वैभव गुरु हो सकता है और क्षत्रिय अपना खोया वैभव पुन: प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यक है कि क्षत्रिय संभलें, सुप्त क्षत्रियत्व जगे। उपाय है, शिक्षा (क्षात्रत्व), शास्त्र, संस्कार, शस्त्र और क्षात्रवृति और सहानुभूति अर्थात् स्वामित्व का भाव।

क्षत्रिय समाज को अपनी पहचान के लिए यदि कोई तंत्र विकसित करने की आवश्यकता उद्वेलित कर रही है तो वह तंत्र एक ही हो सकता है–**'परिवर्तन'**। अपने सोच में, अपने विचार में, अपने आचरण और व्यवहार में परिवर्तन, अपनी शिक्षा, अपनी संगति, अपने पारिवारिक और सामाजिक वातावरण में परिवर्तन, अपने रहन–सहन, अपने खानपान और अपनी रूढिगत मान्यताओं में परिवर्तन। और.....और परिवर्तन स्वयं से ही शुरू होता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में परिवर्तन करे, समाज व्यक्तियों से ही बनता है। व्यक्ति को अपनी आदतों और स्वभाव में परिवर्तन करना होगा। प्रारम्भ घर के आँगन से ही होता है। कौशल्या और जीजाबाई ही राम और शिवाजी बनाती हैं। पहचान नाम से नहीं, कर्म से बनती है। प्रारम्भ पहले माँ के गर्भ और फिर घर के आँगन से होता है।

नामकरण के दो प्रयोजन हैं– 1. आयु और तेज की वृद्धि, 2. सांसारिक व्यवहार में उपयोग। सांसारिक व्यवहार में बालक का कुछ न कुछ नाम तो होना ही चाहिए। इसीलिए नामकरण संस्कार की आवश्यकता रहती है।

नाम कैसा हो? :

बालक का नाम कैसा हो, इसके लिए कहा गया है कि नाम ऐसा हो जिसका सही सरलतापूर्वक उच्चारण किया जा सके। नाम का कोई अर्थ भी होना चाहिए जो समझ में आने वाला हो। नाम अपनी जाति और कुल गौरव के अनुकूल–अनुरूप हो और ओज, तेजयुक्त, प्रताप और विजय सूचक हो। गुण वाचक सार्थक नाम भी रखे जा सकते हैं।

समय बीत चुका जब नाम और पहनावे से जाति की पहचान हुआ करती थी। अब नाम और पहनावे (वेशभूषा) पर किसी व्यक्ति या समाज (जाति) का एकाधिकार नहीं रहा। अतएव मुख्य बात तो **दिशा** ही है। क्षत्रिय समाज को अपनी दशा पर विचार करते हुए अपनी दिशा और दिशा के अनुकूल अपना स्वभाव, अपना आचरण बनाना होगा। पहचान तो इसी से बनती है। अपनी पहचान बनाए रखने के लिए क्षत्रिय को अपने 'स्व' पर लौटना होगा–स्वभाव, स्वाभिमान और स्वधर्म। क्षत्रिय का स्वधर्म क्षात्रधर्म है और ध्येय प्राप्ति के लिए की जाने वाली चेष्टाओं का नाम ही क्रांति है। क्रांति अर्थात् परिवर्तन, परिवर्तन अर्थात क्रान्ति।

जो अपना कर्तव्य नहीं जानता, मनुष्य होते हुए भी वह एक पशु है।

– सुभाषित

आर्य-अनार्य

– गिरधारीसिंह डोभाड़ा

अध्यापक होने के नाते विद्यार्थियों को इतिहास पढाना हिस्से में आया। विद्यार्थियों को इतिहास पढाया। वह इतिहास कैसा? झूठा ही इतिहास पढ़ाना पड़ा। यदि वह इतिहास न पढ़ाता तो नौकरी जाती। विद्यार्थियों को पढाया कि हम आर्य हैं जो भारत के मूल निवासी नहीं हैं। भारत के मूल निवासी तो द्रविड़ हैं। हम तो मध्य एशिया की ओर से आए हुए हैं। हम गोपालक थे और घास-चारे की खोज में भटकते हुए भारत की सिन्धु नदी के आस-पास के विस्तार में पानी और घास-चारा उपलब्ध होने के कारण उत्तरी भारत की नदियों के तटीय विस्तार में स्थायी हुए। इस विस्तार के मूल निवासी द्रविड़ थे। वे काले रंग के सांवले रंग के अनार्य थे। हम मध्य एशिया के शीतीय प्रदेश के होने के कारण गोरे रंग के थे, आर्य थे। हमारे पास रथ, घोड़े, शस्त्र होने के कारण हम शक्तिशाली थे, इसलिए हमने उत्तरी भारत के मूल निवासियों को पराजित करके दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। युरोपीय इतिहासकारों का लिखा आर्यों व अनार्यों के बारे में ऐसा इतिहास हमने पढा और पढाया। हमने राजपूतों के बारे में भी इन्हीं इतिहासकारों का लिखा यह इतिहास पढा और और पढाया कि हम राजपूत विदेशी आक्रान्ताओं हूण, शक के वंशज हैं, जो बर्बर थे लेकिन भारतीय संस्कृति को अपना कर मूल भारतीयों में, मूल आर्यों में घुल-मिल गये। ये इतिहासकार जो स्वयं अंधकार में पड़े हुए थे और जो भारतीय ज्ञान-विज्ञान से सुसंस्कृत हुए, वे ही हमारे इतिहास को झूठा बताते हैं और जो उनका लिखा इतिहास झूठा है, उसे ही सच्चा साबित कर रहे हैं।

संसार की अन्य मानव बस्तियाँ अंधेरे में थी, तब भारतवर्ष युगों से वेद, उपनिषद, महाकाव्यों के ज्ञान से प्रकाशित था। वेद-उपनिषद-पुराण, महाकाव्य (रामायण-महाभारत) सही अर्थों में हमारा इतिहास है। हमारे ऋषि-मुनियों ने कड़ी तपस्या के बाद इस ज्ञान को प्राप्त किया था और शास्त्रों के रूप में मानव जाति को भेंट किया था। हमारे ऋषि-मुनियों के ज्ञान के ये शास्त्र स्पष्ट रूप से हमें बताते हैं कि इस संसार में दो ही जाति प्रजाति है-आर्य और अनार्य, देव और दानव, सुर और असुर। अन्य कोई प्रजाति है ही नहीं। ये नाम जो बताये गये हैं वे तो पर्यायवाची नाम हैं, भेद तो केवल दो ही है-आर्य और अनार्य।

हमारे ऋषि-मुनियों ने, हमारे शास्त्रों ने आर्य और अनार्यों के बीच जो भेद बताये हैं, वे व्यक्ति के गुण और कर्मों के आधार पर बताये हैं न कि रंग के आधार पर। पश्चिमी इतिहासकार रंग को आधार बताते हैं तो हमारे देवता विष्णु, शिव तथा अवतार श्रीराम व श्रीकृष्ण सांवले रंग के हैं, तब तो वे अनार्य हुए। इन युरोपीय इतिहास- कारों की बुद्धि और ज्ञान को हम क्या मानें? हमारे शास्त्रों के अनुसार आर्य वे हैं जो सतोगुण प्रधान हों, जिनका कर्म सत्वमुखी हो। सद्विचार, सत्यवाणी, सदाचार, सद्कर्म, धर्मपालन, कर्तव्यपालन, नीति परायणता, न्याय-प्रियता, छल-कपट रहितता, दया-करुणा, छोटों के प्रति प्रेम, बड़ों के प्रति सेवा-आदरभाव जैसे गुणों वाले आर्य हैं। वे इन गुणों के अनुसार कार्य करते हैं। जीवन के अन्तिम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति हेतु साधना करते हैं। इनके विपरीत गुण, कर्म, भाव रखने वाले अनार्य हैं। एक ही माता-पिता की संतान विभीषण आर्य था तो रावण अनार्य। हालांकि रावण विद्वान और शिवभक्त था पर उसके कर्म अनार्य के थे। धर्म पर चलने वाले पाण्डव आर्य थे तो अधर्म की राह पकड़ने वाले कौरव अनार्य।

बनवास के दौरान राम स्वर्ण मृग के रूप में मारीच

को मारते हैं। मारीच राक्षस था। वह मरते समय कपट करके श्रीराम की आवाज में हा लक्ष्मण! हा सीते! पुकारता है। सीता लक्ष्मण को राम की सहायता को जाने के लिए कहती है। राम ने जाते समय लक्ष्मण को आदेश दिया था कि यहाँ राक्षसों का भय रहता है इसलिए मेरे लौट आने तक आश्रम और सीता की रक्षा करना। इसलिए लक्ष्मण सीता के कहने पर भी नहीं जाता है। तब सीता ने लक्ष्मण को कठोर वाणी में कहा –

अनार्याकरुणारम्भ नृशंस कुल पांसन ।।21।।
अहं तव प्रियं मन्ये रामस्य व्यसनं महत्।
रामस्य व्यसनं दृष्ट्वा तेनैतानि प्रभाव से ।।22।।
(वाल्मीकीय रामायण, अरण्य काण्ड, पञ्चचत्वरिंशसर्म)

अर्थात्– अनार्य! निर्दयी! क्रूरकर्मा! कुलाङ्गार! मैं तुझे खूब समझती हूँ। श्री राम किसी भारी विपत्ती में पड़ जाएँ, यही तुझे प्रिय है। इसलिए तू राम पर संकट आया देखकर भी ऐसी बातें बना रहा है। नहीं जा रहा।

क्या लक्ष्मण अनार्य था? नहीं, लेकिन सीता ने लक्ष्मण को अनार्य कहकर अनार्य के गुण कर्म का उल्लेख किया है। जो क्रूर है, दुष्ट है, आडम्बरी है, विश्वासघाती है, कुदृष्टि वाला है वह अनार्य है। लक्ष्मण तो पवित्र सद्गुणों वाले आर्य थे। श्री वाल्मीकी जी आगे युद्ध काण्ड के 66वें सर्ग श्लोक 21 में भी अनार्य के गुणों का वर्णन करते हैं –

कुलेष जाताः सर्वेऽस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु।
क्व गच्छत भयत्रस्ताः प्राकृता हटयो यथा।
अनार्याः खलु यद्भीतास्त्यक्तवा वीर्यं प्रधावत।।

अर्थात्– तुम सब लोग महान और बहुत दूर तक फैले हुए श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए हो। फिर साधारण वानरों की भाँति भयभीत होकर कहाँ भागे जा रहे हो? यदि तुम पराक्रम छोड़कर भय के कारण भागते हो तो निश्चय ही अनार्य समझे जाओगे।

मतलब स्पष्ट है कि जो व्यक्ति या समाज उत्तम कुल का कहा जाता है वह 'शौर्यं तेजोधृतिर्दाक्ष्यं' शूरवीर, तेजस्वी, युद्ध दक्ष, दृढ और धैर्यवान हो, धर्मपालन और धर्मयुद्ध में पीछे हटने वाला न हो, व आर्य है। इन गुणों रहित व्यक्ति या समाज अनार्य है। युद्ध में जब कुंभकरण की महाकाया को देखकर वानर योद्धा भागने लगते हैं, तब अंगद अपने सैनिकों को ऊपर लिखी बात कहता है।

सत्य, न्याय, नीति की रक्षा हेतु धर्म युद्ध करना मानव का कर्तव्य है। यही आर्य का स्वभाव है। यही क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म है, स्वधर्म है। जो इससे मुँह मोड़ लेता है, वह अनार्य है। महाभारत के युद्ध में दोनों ओर की सेना में अपने ही सगे सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन विषाद में डूब जाता है और युद्ध न करने के लिए श्रीकृष्ण से कहता है, तब भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते कहते हैं कि हे अर्जुन! तुझ में अनार्य का भाव कैसे आ गया है। हे अर्जुन! अनार्य जिसका आचरण करता है, जिससे स्वर्ग प्राप्ति में बाधा आती है, जिससे अपकीर्ति होती है, ऐसी इस मन की उदासीनता इस प्रतिकूल समय में कहाँ से प्राप्त हुई –

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्य जुष्टमस्वर्ग्यम कीर्तिकरमर्जुन।।
गीता अ.2. श्लोक 2

धर्म की रक्षा के लिए युद्ध करना क्षत्रिय का, आर्य का परम कर्तव्य है। आर्य के लिये, क्षत्रिय के लिये, मनुष्य के लिए स्वर्ग प्राप्ति का यही सरल मार्ग है।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः।।
2/37

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–हे कौन्तेय! यदि तू युद्ध में मर गया तो तुझे स्वर्ग मिलेगा, स्वर्ग की प्राप्ति होगी और विजयी हुआ तो तू राज्य भोगेगा। तू कृत निश्चयी होकर युद्ध कर। श्रीकृष्ण अर्जुन से यह भी कहते हैं–

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारभवावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।। 2/32

अर्थात्- हे पृथा पुत्र अर्जुन! अनायास ही प्राप्त हुए स्वर्ग के खुले द्वार रूप ऐसा धर्मयुद्ध भाग्यवान क्षत्रिय को ही प्राप्त होता है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।। 2/31

अर्थात्- अपने धर्म को देखकर भी तुझे भय नहीं करना चाहिए, क्योंकि क्षत्रिय के लिए धर्म युक्त युद्ध से बढकर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है।

अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिंच हित्वा पापमवाप्स्यसि।। 2/33

अतः यदि तू इस धर्म युक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।

इस प्रकार आर्य कोई रंग रूप भेद वाला व्यक्ति नहीं है बल्कि गुण-कर्म के भेद वाला व्यक्ति है।

'हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत' (ऋग्वेद 3. 34-9) अर्थात् दस्युओं को अनार्यों को मारकर आर्य वर्ण की रक्षा की। दस्यु यानी दुश्मन जो सतोगुणीय कर्मों का दुश्मन है, वह दस्यु है और जो दस्यु है वह अनार्य है, क्योंकि वह तमोगुणी है।

तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्ध धानमयजमानमाहुरा सुरो बतेत्य-सुराणां ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेना-लंका रेणेति सूं स्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुंलोकं जेष्यन्तोमन्यन्ते।।
(छान्दोग्योप निषद् 8.8-5)

अर्थात्- जो दान नहीं करता है, श्रद्धा नहीं रखता है, यज्ञ नहीं करता है, उसे असुर कहते हैं- अनार्य कहते हैं। असुरों का तो यह रिवाज है कि मतृक व्यक्ति के लिए भिक्षा के रूप में दिये हुए पदार्थों, वस्त्रों और अलंकार से शृंगार करते हैं, जिससे परलोक में उच्च गति प्राप्त होगी, ऐसा मानते हैं।

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की थी। उनका उद्देश्य था-'कृण्वन्तो विश्वमार्य्' यानी समग्र विश्व को, सबको आर्य बनाना। वेद कालीन ऋषि-मुनियों की यह भावना वैदिक युग से पहले भी थी और बाद में भी बनी रही। इसी भावना ने आक्रान्ताओं, यवनों, हूणों, शक आदि जो समान धर्मी अनार्य थे को भारतीय आर्य संस्कार और संस्कृति ने अपने में घुलने-मिलने दिया।

श्री क्षत्रिय युवक संघ का कार्य भागवत विचारों पर ही चल रहा है। श्री क्षत्रिय युवक संघ गुणात्मक आर्यत्व में विश्वास रखता है न कि शारीरिक रंग-रूप में। हमारे वेद इत्यादि धर्म ग्रन्थों में सतोगुणी व्यक्ति के लिए आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है। गुण, कर्म और स्वभाव के कारण क्षत्रिय राजकुमार श्री राम को हम भगवान मानते हैं। उनके लिए वाल्मीकी की रामायण में कई बार आर्य शब्द का प्रयोग किया गया है। गीता के अनुसार जो क्षत्रिय अपने स्वधर्म का पालन नहीं करता है वह अनार्य है। रामायण के अनुसार जो व्यक्ति दुर्गुणी है। जिसका मन पवित्र नहीं है, वह अनार्य है। श्री क्षत्रिय युवक संघ मानव मात्र में सद्गुणों का निर्माण करना चाहता है, इसी क्षेत्र में कार्य कर रहा है। यह कार्य केवल उपदेशात्मक नहीं बल्कि आचरणात्मक है। शाखाओं में, शिविरों में खेलों, चर्चाओं और ऐसी रचनात्मक प्रवृतियों द्वारा संघ यह कार्य कर रहा है। श्री क्षत्रिय युवक संघ का यह कार्य वैदिक यज्ञ से प्रारम्भ होता है। वेदों का ज्ञान, वैदिक-यज्ञ से व्यष्टि को समष्टि की ओर और समष्टि की ओर से परमेष्टि की ओर ले जाने वाला है। वेदों का ज्ञान गहन है, इसलिए भगवान कृष्ण ने उसे सरल बनाकर अर्जुन को गीता के रूप में उपदेश दिया जो कलियुग में परमेश्वर को प्राप्त करने का, परमेश्वर की ओर ले जाने का सरल मार्ग है। जो भक्ति, ज्ञान और कर्म का मार्ग है। इसके द्वारा नियमित-निरंतर स्वाध्याय करने से, जो मनुष्य का स्वधर्म है, उसका पालन करने से परमेश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। यही श्री क्षत्रिय युवक संघ का दर्शन है और संघ का इसमें दृढ़ विश्वास है, इसमें श्रद्धा रखता है।

गतांक से आगे

छोड़ो चिन्ता-दुश्चिन्ता को

– स्वामी जगदात्मानन्द

प्रेम का आकर्षण :

जहाँ प्रेम है, वहाँ भय नहीं रहता।

ईसामसीह कहते हैं, 'सच्चा प्रेम सभी प्रकार के भयों का नाश कर देता है।' पवित्र और नि:स्वार्थ प्रेम एक दिव्य शक्ति है। सेंट पॉल कहते हैं, 'विश्वास, आशा और प्रेम-इन तीन सद्गुणों में प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ है।'

प्रेम, प्रेरित करता है और कार्य करने की बड़ी क्षमता प्रदान करता है। ये दोनों ही मानवता की प्रगति के लिए आवश्यक है।

प्रेम जीवन, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और शान्ति प्रदान करता है। किसी व्यक्ति को नरक के अन्धकारमय गर्त से बाहर निकालने की शक्ति प्रेम में ही है। प्रेम किसी व्यक्ति के जीवन में आमूल सुधार ला सकता है, जिसके फलस्वरूप वह हर क्षेत्र में उन्नति कर सकता है। प्रेम के अभाव में लोग विशादग्रस्त, दुर्बल और दु:खी हो जाते हैं।

विशेषज्ञों का कहना है कि जो बच्चे अपनी शैशवावस्था या बचपन में माता-पिता के शुद्ध प्रेम का आस्वादन नहीं कर पाते, वे बाद में दुष्ट, भ्रष्ट और क्रूर बन जाते हैं।

एक विशेषज्ञ का कहना है, 'बच्चों को यदि शैशवावस्था से ही भय के वातावरण में रखा जाए तो ऐसी परिस्थिति में उनके हृदय में अपने आप ही हिंसा, बुराई, क्रूरता, निष्ठुरता जैसे गुण पनपने लगते हैं। उन्हें भय और आतंक में रखना, उन्हें अपराधी बनाने का निश्चित उपाय है।'

बच्चों के प्रति निश्छल प्रेम दर्शाने का यह अर्थ कदापि नहीं कि उन्हें यथेच्छानुसार करने दिया जाए। नि:संदेह बच्चों के पालन-पोषण के दौरान सुधार-प्रक्रिया के एक अंग के रूप में अनुशासन जरूरी है। अच्छे कार्यों की प्रशंसा तथा पुरस्कार द्वारा उत्साहवर्धन करना बच्चों के साथ व्यवहार करने का एक सार्वभौमिक मान्यता प्राप्त तरीका है। और इसमें भी संदेह नहीं कि गलतियाँ करने पर उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। जब बच्चों को बोध होता है कि दण्ड तथा डांट उनके अपने हित के लिये है और यदि उन्हें दिया गया दण्ड उनकी गलती के अनुरूप होता है, तो सामान्यतया वे उसे बुरा नहीं मानते। जो भी हो, बच्चों को बोध होना चाहिए कि दण्ड उनके दुष्कर्म के लिए है। जिस समय डाँट-फटकार ही बच्चों के हित में हो, उस समय उन्हें लाड़-प्यार करना ठीक नहीं।

समर्पण में ही जीत है :

एक शिक्षित दम्पति है। पति-पत्नी, दोनों एक ही कॉलेज में पढ़ाते हैं। दोनों में प्राय: असहमति रहती थी। तर्क-वितर्क से कभी-कभी संकट खड़ा हो जाता था। कुछ काल बाद पति का तबादला हुआ और वे नये शहर में रहने लगे। थोड़े दिन वे शान्तिपूर्वक रहे। एक दिन दोनों में फिर झगड़ा हुआ। पति अपने क्रोध पर नियंत्रण न रख सका। उसने पत्नी के गाल पर थप्पड़ जड़ दिया। पत्नी भी इसे सह नहीं सकी। वह उसी रात अपनी माँ के साथ रहने चली गयी।

कुछ दिनों बाद उसने किसी से सुना कि उसके पति को टाइफाइड हुआ है। वह अपना कर्तव्य निर्धारित नहीं कर सकी। वह श्री ब्रह्मचैतन्य महाराज के पास गयी। उन्होंने कहा-'एक साइकिल की कल्पना करो। यदि इसके एक पहिए को एक दिशा में और दूसरे पहिए को विपरीत दिशा में चलाया जाए तो साइकिल नहीं चलेगी। नर और नारी में स्वभाव का

थोड़ा-बहुत अन्तर होना स्वाभाविक ही है। संसार चलाने के लिए यह अन्तर आवश्यक है। यदि मनुष्य के पास शौर्य और उदारता है, तो नारी धैर्य और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति है। वस्तुत: भगवान का बनाया हुआ यह संसार एक रंगमंच है, जहाँ हर व्यक्ति से यथाशक्ति सर्वोत्तम ढंग से अपनी भूमिका के निर्वाह की अपेक्षा की जाती है। छोटी भूमिका मिले, तो भी उसे उचित ढंग से सम्पन्न किया जाना चाहिए। एक छोटी भूमिका के लिए पुरस्कार या सफलता का उतना ही महत्त्व है, जितना बड़ी भूमिका के लिए। बच्चों को जन्म देना और माँ बनने का सम्मान प्राप्त करना नारी का विशेषाधिकार है। वह तुम्हारे पति को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। अत: अपने अधिकार का दावा करने का विचार छोड़ दो। एक-दूसरे को प्रेम और स्नेह देने में ही सुख है।' उसने पूछा-'अब मैं क्या करूँ?' श्री महाराज ने कहा-'अगली ट्रेन से पति के पास चली जाओ। उनकी ऐसी सेवा करो, मानो तुम दोनों के बीच कुछ हुआ ही न हो। नित्य प्रात: उन्हें प्रणाम करना। तुम कृतार्थ हो जाओगी।'

तद्नुसार वह अपने पति के पास चली गई और उनकी सेवा करने लगी। कुछ ही दिनों में उनका ज्वर उतर गया। एक दिन प्रात: उठने पर पति ने देखा कि पत्नी उसे प्रणाम कर रही है। वह आत्मग्लानि से भरकर कह उठा, 'ईश्वर की कृपा से मेरी हालत सुधर रही है, परन्तु मैं अपने आचरण के लिए अत्यन्त दु:खी हूँ। तुम मेरी गलती पर ध्यान न देकर मेरे पास आ गयी। तुम्हें निश्चय ही किसी महात्मा का निर्देश मिला होगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दुबारा भूल नहीं करूँगा।' पति-पत्नी के बीच मेल-जोल हो गया। कुछ दिनों बाद उन्हें एक पुत्र हुआ। दोनों अपने पुत्र के साथ श्री महाराज के पास गए और अपने जीवन में शान्ति और सामंजस्य की बहाली के लिए उनके प्रति आभार व्यक्त किया।

रहस्य क्या है? :

समाज शास्त्र के एक प्राध्यापक ने अपने छात्रों को निर्धनों की बस्ती में रहने वाले युवकों का अध्ययन करने का निर्देश दिया था। यह घटना अमेरिका के बाल्टीमोर अंचल में हुई थी। छात्रों ने वहाँ जाकर लगभग 200 युवकों का साक्षात्कार लिया और उनके बारे में ढेर सारी सूचनाएँ एकत्र की। बस्ती का परिवेश भयावह था। वहाँ युवकों के लिए सद्गुणों को सीखने का कोई अवसर न था। उस बस्ती का अध्ययन करने वाले छात्रों ने भविष्यवाणी की कि वहाँ के कम-से-कम 10% युवक आगे चलकर अपराधी बन जाएँगे।

25 वर्षों बाद उन्हीं प्राध्यापक ने, उसी क्षेत्र में, एक अन्य अध्ययन-दल भेजा। वे यह जानने को उत्सुक थे कि उनके पुराने छात्रों की भविष्यवाणी कहाँ तक सत्य हुई है। 25 वर्षों पूर्व के दल ने जिन 200 युवकों का अध्ययन किया था, छात्रों का यह नया दल उनमें से 160 लोगों से मिलने में समर्थ हुआ। छात्रों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पूर्ववर्ती भविष्यवाणी गलत साबित हुई। उनमें से सभी सभ्य मनुष्य बन गए थे। उनके इस रूपान्तरण का क्या रहस्य था?

रूपान्तरण का अग्रदूत :

नया अध्ययन-दल पहले दल की भविष्यवाणी के असत्य हो जाने का कारण जानने को उत्सुक था। दल के सदस्यों को पता चला कि उस झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र में स्थित विद्यालय के सभी विद्यार्थी मिस शीला रौरके नामक एक अध्यापिका के प्रभाव में आए थे। शीला तब तक सेवानिवृत्त हो चुकी थी। उन्हें खोज पाना बड़ा कठिन कार्य था। परन्तु थोड़े प्रयास के बाद अध्ययन-दल उन्हें ढूँढने में सफल हो गया। सदस्यों ने उनसे पूछा कि इस निराशाजनक परिवेश में वे बालकों को कैसे प्रेरित कर सकीं तथा उन्हें प्रगति-पथ पर आगे

बढ़ाकर देश के सुयोग्य नागरिक बनाने में उन्होंने क्या तकनीक अपनायी। शीला रौरके ने कहा, 'मुझे नहीं लगता कि मैंने कोई योजनाबद्ध रूप से कार्य किया हो। मैं तो केवल इतना ही जानती हूँ कि वहाँ अध्यापिका के रूप में कार्यरत रहते समय मैंने प्रत्येक विद्यार्थी से प्रेम तथा आदर से युक्त व्यवहार किया।'

आप सोचेंगे कि यह बड़ा साधारण उत्तर है, पर इसका यह अर्थ है कि आपने प्रेम के सच्चे स्वरूप को ठीक-ठीक नहीं समझा। आपने प्रेम को सस्ती आवेगपूर्ण भावुकता के जैसा ही समझ लिया है। प्रेम सच्चे रूपान्तरण को शुरू कर सकता है। केवल प्रेम प्राप्त करने वाले लोग ही इसकी सच्ची महानता को समझ सकते हैं और केवल वे ही दूसरों को प्रेम प्रदान कर सकते हैं। प्रेम अपने प्रेम-पात्र की आत्मछवि को सबल बनाकर उसके आत्मविश्वास में वृद्धि कर सकता है। शुद्ध प्रेम का आस्वादन करने वाला विकसित होकर एक संपूर्ण व्यक्तित्व में परिणत हो जाता है। वह अपने वैशिष्ट्य को बनाए रखकर एक उत्तम चरित्र वाला व्यक्ति हो जाता है।

माता-पिता तथा परिवार के बड़ों का व्यवहार प्रेम एवं समझदारी से युक्त होना चाहिए। इस प्रकार घर के बड़े एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसे देखकर बच्चे उसे अपनाने का प्रयास करते हैं। बच्चों में ऊर्जा तथा प्रतिभा का भण्डार होता है। बड़ों के सम्पर्क से प्राप्त विशुद्ध प्रेम और नैतिक प्रेरणा बच्चों की प्रसुप्त शक्ति को सही दिशा की ओर उन्मुख करने में सहायक होती है।

विशुद्ध प्रेम प्राप्त करने वाला ही दूसरों को प्रेम दे सकता है। नवजात शिशु बातें नहीं कर सकता, तो क्या कोई माता यह सोचती है, 'बच्चा तो कुछ नहीं बोलता, तो फिर मैं क्यों बोलूँ?' माँ अपने बच्चे के साथ प्रेमपूर्वक बातें करती रहती है। वह बच्चे पर अपने प्रेम की वर्षा करती है और बच्चा आनन्द और किलकारी के द्वारा उसका उत्तर देता है। हँसी और खिलखिलाहट ही इस प्रेम की भाषा है। माँ के इस प्रेमपूर्ण आचरण के कारण ही बच्चा बोलने की कला जान लेता है। सच ही कहा गया है, 'माँ की गोद में ही बोलना सीखा जाता है।'

शिशु बोलकर अपना प्रेम प्रकट नहीं कर सकते। शिशु के रूप में हम प्रेम प्राप्त करते तो हैं, परन्तु बोधपूर्वक हम उसका प्रतिदान करने में सक्षम नहीं हैं। घर में माता-पिता तथा बड़ों और विद्यालय में अध्यापकों और सहपाठियों द्वारा प्राप्त प्रेम के द्वारा ही हमारा विकास होता है। नि:स्वार्थ तथा विशुद्ध प्रेम ही हमारे चरित्र की विशेषताओं की पहचान करता है, हमारे गुणों को देखता है, भूलों को क्षमा करता है, हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है, हमारी अच्छाइयों को रेखांकित करता है और हमारी विशेषताओं को बनाए रखकर हमारे व्यक्तित्व के विकास में मदद करता है।

यह नि:स्वार्थ प्रेम हमें कौन दे सकता है?

एरिक फ्रॉक कहते हैं, 'लोगों का विश्वास है कि प्रेम करना बड़ा आसान है। यद्यपि हम सभी प्रेम करने की जन्मजात क्षमता रखते हैं, तो भी केवल कुछ लोगों ने ही वास्तव में प्रेम करने की कला अर्जित की है।' कोई युवक सोच सकता है कि जिस युवती से उसका विवाह होने जा रहा है, वह उससे प्रेम करता है; क्योंकि युवती बुद्धिमान तथा सुन्दर है। पर इसे सच्चा प्रेम नहीं कहा जा सकता। यह तो केवल प्रशंसा या पसन्द ही प्रकट करता है। प्रेम की दृढ़ता और स्थिरता प्रिय के गुणों पर निर्भर नहीं होते। व्यक्ति की अपनी क्षमता के अनुसार ही प्रेम सुदृढ़ या स्थिर होता है। कुछ लोगों की धारणा है कि प्रेम कर पाने का गुण जन्मजात नहीं होता। विलियम सी. मेनिंजर कहते हैं, 'बेहतर होगा यदि माता-पिता ही बच्चों को प्रेम करने की कला सिखाएँ।'

प्रेम का स्वरूप :

अनेक लोगों का विचार है कि प्रेम एक

भावनात्मक उत्तेजना या पुरुष तथा नारी के बीच दैनिक आकर्षण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। पर दैहिक आकर्षण से अलग करके ही हमें सच्चे प्रेम के स्वरूप को समझने का प्रयास करना चाहिए। केवल तभी हम इसकी विराट् शक्ति तथा महान प्रभाव को महसूस कर सकते हैं।

एडलाइ स्टीवेंसन कहते हैं, 'प्रेम का अर्थ भावुकता या अधिकारपूर्ण भावना नहीं है, अपितु दूसरों के वैशिष्ट्यों की सतत पहचान और निरंतर उनके भले की कामना है।'

उस गरीबों की बस्ती के बच्चों के प्रति शीला रौरके का प्रेम इसी कोटि का है। उन्होंने हर छात्र का पर्याप्त ध्यान रखते हुए उसकी रुचि, पृष्ठभूमि, सामर्थ्य तथा कमियों का ख्याल करके, उनके विकास हेतु अपेक्षित उपायों के बारे में विचार किया था। एक वाक्य में कहें तो वे अपने प्रत्येक छात्र को समझने में समर्थ थीं। उन्होंने उनके सर्वांगीण विकास की आवश्यकता को पूरा करने के लिए उनके सुखों तथा दु:खों में हिस्सा बँटाने का प्रयास किया था। वे विद्यार्थियों से प्रेम तो करती थी, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें मनमाने ढंग से कुछ भी करने की छूट मिल गयी थी। छात्रों द्वारा शरारत की लक्ष्मण-रेखा पार करने पर उन्होंने अपनी छड़ी का सहारा भी लिया था। परन्तु जिस प्रकार उन्होंने छात्रों की भूलों के लिए उन्हें सजा दी, ठीक उसी प्रकार उनकी विशेष उपलब्धियों तथा प्रतिभा के लिए उनकी प्रशंसा की और उन्हें प्रोत्साहित किया। उनकी कल्याण-कामना के अलावा अन्य कोई भी विचार न रखकर उन्होंने उन्हें शिष्ट व्यक्ति बनाने के लिए दीर्घ काल तक कठोर प्रयत्न किया था। वस्तुत: यदि वे प्राप्त होने वाले वेतन के बदले अपेक्षित न्यूनतम कर्तव्य ही निभाती रहती, तो भी कोई उन पर दोषारोपण नहीं करता। उनकी सद्भावनाओं तथा भले इरादों को समझ पाने में अक्षम लोग शायद व्यंग्यपूर्वक कहते थे, 'वह इन मूर्खों के लिए इतना कष्ट क्यों मोल लेती है? लगता है उसे करने को घर पर कोई बेहतर कार्य नहीं है। नहीं तो भला कौन इन शैतानों को सुधारने की चेष्टा में लगेगा? या इससे कहीं उसे कोई और लाभ तो नहीं मिलता?'

परन्तु यही प्रेम की शक्ति है। प्रिय व्यक्ति के लिए की गई सेवा और त्याग दूसरों को आवश्यकता से अधिक लग सकता है। पर बीमारी और दर्द से बच्चे के चिल्लाते रहने पर क्या कोई माँ शान्तिपूर्वक सो सकती है? वह निद्रा त्यागकर, किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना करके बच्चे को स्वस्थ करने के लिए उसकी सेवा करती है। इसी प्रेम के कारण मनुष्य अपने शैशवकाल की असहाय अवस्था में भी जीवित रह पाने में समर्थ होता है। प्रेम की यही अभिव्यक्ति बच्चों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास का भाव ला देती है और उन्हें महान व्यक्तियों के रूप में विकसित होने में मदद करती है। शीला रौरके उन अभागे बच्चों के प्रति जो शुद्ध तथा नि:स्वार्थ प्रेम अर्पित करने में समर्थ हुई, उसी के फलस्वरूप अन्तत: वे बालक अपने पैरों पर खड़े होकर अच्छा जीवन बिताने के योग्य हुए थे। शायद अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि 'मैंने हर बच्चे को प्यार किया।' -शीला के इस अत्यन्त साधारण कथन के मर्म में नि:स्वार्थता तथा सेवा-भावना की एक कैसी मिसाल छिपी है। तुम्हारे भीतर भी प्रेम का स्रोत उमड़ना चाहिए। चलो, हम भी प्रेम के लिए बलिदान होना सीख लें। चलो, हम भी सेवा के आदर्श के प्रति लगाव तथा यथार्थ प्रेम का विकास करें।

तुम्हारा आदर्श :

तुम भी लोकप्रिय होना चाहते होंगे, पर तुम्हें कोई उपाय नजर नहीं आता। उपाय है। लोगों के विशेष गुणों तथा क्षमताओं को पहचानकर, क्या तुम उनकी प्रशंसा करके, निश्छल भाव से आनन्दित हो सकते

हो? क्या तुम उन्हें प्रोत्साहन दे सकते हो? क्या तुम उनकी भलाई के उपायों पर चिन्तन कर सकते हो? क्या तुम उनकी समृद्धि के लिए प्रार्थना कर सकते हो? दूसरे शब्दों में, क्या तुम उन्हें अपना नि:स्वार्थ प्रेम प्रदान कर सकते हो? यदि ऐसा है, तो निश्चय ही तुम भी लोगों का प्रेम हासिल कर सकते हो।

क्या तुम एक विद्वान या महान चिन्तक बनना चाहते हो? इसके लिए तुम्हें अपने पाठ्य विषय के प्रति प्रगाढ़ प्रेम विकसित करना होगा। एक बार अपने चुने हुए विषय के प्रति तीव्र प्रेम का विकास हो जाने पर तुम स्वयं देखोगे कि तुम्हारे सम्मुख नये क्षितिज और नये विचार क्रमश: खुलते ही जा रहे हैं।

क्या तुम स्वस्थ और सबल होना चाहते हो? इसके लिये अपने आसपास के लोगों को प्रेम तथा स्नेह की दृष्टि से देखो। संपूर्ण प्रकृति, वनस्पतियों तथा जीव-जन्तुओं के प्रति प्रेमपूर्ण दृष्टि रखो। इसका तुम्हारे मन तथा रक्त-कोशिकाओं पर स्वास्थ्यवर्धक प्रभाव होगा। यदि तुम घृणाभाव का पोषण तथा प्रसार करोगे, तो तुम्हारा शरीर और मन विषाक्त हो जाएँगे।

हाँ केवल प्रेम खून में सर्वाधिक हितकर और स्वास्थ्यकर रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न करता है। जीवन को एक सुखमय जीवन-यात्रा बना लेने के आदर्श मार्ग के विषय में क्या अब भी तुम्हारे मन में सन्देह है? **(क्रमश:)**

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

हो, मैं जाग रहा हूँ। और मैं देख रहा हूँ और देख रहा हूँ कि तुम्हारे जीवन में कहाँ अच्छे कदम उठ रहे हैं और कहाँ तुम्हारी साधना भंग हो रही है। इस्लाम धर्मी भी कहते हैं कि कोई देखे या न देखे, अल्लाह देख रहा है। ध्वज हमारी उपासना का प्रतीक भी है। क्षात्र-धर्म के उपासक का प्रतीक है। इसको याद रखते हुए, इसकी तरफ देखते हुए स्वत: हमारा मस्तक झुक जाना चाहिए। कुछ समय के लिए हम ध्वज स्थान पर आते हैं, सुबह-शाम प्रार्थना करते हैं इतने में ही नहीं, जहाँ से आपको दिखाई पड़े, चलते-उठते-बैठते तो इसका स्मरण बनाये रखें क्योंकि यह हमारे ध्येय का, हमारे ईश्वर के मार्ग का प्रतीक है।

कलियुग में हमारी मान्यताओं में, हमारे धार्मिक ग्रन्थों में, हमारी सांस्कृतिक परम्परा में यह बताया गया है कि कोई युग था जब हम यज्ञ किया करते थे, कोई युग था जब हम तपस्या करते थे और कोई युग ऐसा था कि इन सबको करते हुए हम युद्ध भी करते थे। जो संगठित होकर युद्ध करते हैं वे लक्ष्य को पा जाते हैं। हम यहाँ संगठित होकर कार्य कर रहे हैं और संगठन में सबका ध्यान रखना आवश्यक है। कहीं मेरे किसी कदम से, मेरी किसी बात से, मेरी मुस्कराहट से, मेरी नाराजगी से मेरे घट में किसी को तकलीफ तो नहीं हो रही है। संपूर्ण समूह में किसी प्रकार की तकलीफ तो नहीं हो रही है। हम इतना जोर से अट्टहास लगाकर हँसते हैं, कहीं किसी के काम में बाधा तो नहीं पड़ रही है। और मैं बिल्कुल उदासीन रह रहा हूँ, लोग मेरी ओर देखकर किसी प्रकार की प्रेरणा नहीं ले सकते, ऐसे उदासीन सम्प्रदाय वालों को भी यहाँ प्रयत्न करना चाहिए कि मेरा असर लोगों पर गलत पड़ रहा है, तो यह उदासीनता उतार दें। और इस उदासीनता से ज्यादा ही लगाव है तो शिविर से जाने के बाद भले उतारी हुई उदासीनता को ले जाएँ, यद्यपि यह संघ तो नहीं चाहता कि आप शिविर के बाहर भी उदासीन रहें। श्री क्षत्रिय युवक संघ की ओर से आज के मंगल प्रभात में यही आदेश है।

पृथ्वीराज चौहान

– विरेन्द्रसिंह मांडण (किनसरिया)

संपर्क दायरा, व्यक्तित्व और आरम्भिक जीवन (भाग–2)

पिछले अंक में हमने तोमरों, नागार्जुन व पृथ्वीराज चौहान के बीच दिल्ली, अजमेर और गुड़पुर के मध्य बना जो घटनाक्रम देखा, वह पृथ्वीराज के पदासीन होने के कुछ समय बाद ही शुरू हुआ होगा। पूर्वोक्त है कि राज्य में नया राजा और ऊपर से उसके अवयस्क होने को सदा इतिहास में शत्रु पक्ष ने आक्रमण का एक अवसर माना है। यह सब मुख्य भारत में शहाबुद्दीन गोरी के पैर पड़ने से पहले घटित हुआ जिसकी विवेचना हम आगे एक अन्य लेख में करेंगे।

भादानकों पर आक्रमण :

जब अजमेर का सिंहासन स्थिर हो गया तो अपने स्वभाव अनुसार पृथ्वीराज नया लक्ष्य ढूंढने लगे। अर्जुन को, भेदने हेतु अगली मछली 2 वर्षों बाद यदुवंशी भादानकों के रूप में मिली। इस आक्रमण का उत्प्रेरक कुछ ने भादानकों की लूटपाट को बताया तो कुछ विद्वानों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि भादानकों ने नागार्जुन तोमर की सहायता की होगी सो पृथ्वीराज ने उन्हें दण्डित करने की ठानी। पर एक सरल–सा कारण यह भी हो सकता है कि कदंबवास, भुवनैकमल्ल और कर्पूरीदेवी ने युवा राजा की ऊर्जा का उपयोग राज्य के विस्तार या दंड से धनार्जन के लिए किया हो। भादानकों का राज्य अजमेर से पूर्व और उत्तर पूर्व में था। भादानक लगभग 1146 ई. तक तोमरों के सामंत थे और उसके बाद उनका स्वतंत्र राज्य बना।[1]

श्री विंध्यराज चौहान के अनुसार भादानक एक लुटेरी जाति थे जो चौहान राज्य में लूटपाट कर पीछा होने पर चंबल के बीहड़ों में छिप जाया करते थे।[2] इसे मानने पर स्थिति बड़ी विचित्र हो जाती है कि 1. समकालीन विवरणों अनुसार इन तथाकथित लुटेरों की सेना में सबसे तेज भागने वाले पशु अर्थात् हाथियों[3] का विशाल दल था और 2. इनका पीछा करती कोई भी सेना इनके छिप जाने पर इनके नगरों–करौली, भरतपुर, बयाना, त्रिभुवनगढ़/तहनगढ़ आदि पर आक्रमण कर उन्हें ध्वस्त नहीं करती। भादानकों के लुटेरी जाति होने में हमें कोई सत्य नहीं दिखता, वे यदुवंशी क्षत्रिय थे।

भादानकों पर चौहानों का आक्रमण उनके दिग्विजय अभियान की योजना में पहला पड़ाव लगता है। इसी की तैयारी में नारायणा में एक अस्थायी सैन्य स्कंधवार स्थापित किया गया[4]। यह स्थान अजमेर से 70 कि.मी. उत्तर पूर्व में है हरियाणा के नरैना/निडाना से भिन्न है।

वि.सं. 1239 (1182ई.) में जैन आचार्य जिनपति सूरि नारायण की राजसभा में आए और पृथ्वीराज के जैन मंत्री पद्मनाभ से शास्त्रार्थ किया। यह शास्त्रार्थ कदम्बवास की उपस्थिति में हुआ क्योंकि पृथ्वीराज की उपलब्धता स्वाभाविक है कि उस समय नियमित नहीं थी। इस समय तक भादानकों के विरुद्ध अभियान पूरा हो चुका था और सेना लौट आयी थी। पद्मनाभ से आचार्य सूरि के शास्त्रार्थ जीतने के थोड़ी देर बाद ही 19 वर्षीय पृथ्वीराज प्रवेश कर सबसे पहले शास्त्रार्थ का परिणाम पूछते हैं कि कौन विजयी रहा। बाद में आचार्य सूरि भादानकों पर विजय में पृथ्वीराज के शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि भादानकों की विशाल उच्च कोटि गज सेना के होते हुए भी पृथ्वीराज ने उन्हें परास्त किया। पृथ्वीराज फिर अजमेर लौटते हैं और आचार्य को जयपत्र देकर विदा करते हैं।[5]

इस वृत्तान्त से श्री दशरथ शर्मा ने निष्कर्ष निकाला कि अब भादानकों का समूल नाश हो गया। माना कि आक्रमण हुआ और भादानक परास्त हुए, पर उनके समूल नाश की बात सिद्ध नहीं होती और इस पर विवेचना हम आगे किसी अंक में करेंगे।

कलिंजर पर उल्कापात– चन्देलों विरुद्ध अभियान :

जुझारू और दिग्विजयाकांक्षी पृथ्वीराज नए लक्ष्य बनाते जा रहे थे। भादानकों को ध्वस्त करने के बाद अगली कड़ी में युद्ध के चौहाणी नगाड़े परमर्दिन चंदेल के जेजाकभुक्ति प्रान्त में बजे। पृथ्वीराज का यह अभियान वि.सं. 1239 यानी मार्च 1182 ई. से फरवरी 1183 ई. के बीच पूरा हो गया।

पृथ्वीराज के आक्रमणों की मार चंदेल राज्य में दूर तक पड़ी। इस विषय में पृथ्वीराज रासो के अतिरिक्त बढ़-चढ़कर व्यक्त करते महोबा/आल्हा खंड[6] आदि प्राचीन हिन्दी के आख्यान साहित्य पृथ्वीराज का महिमामंडन नहीं करते। ये चौहानों के विरुद्ध लड़े आल्हा व उदल जैसे बनाफर योद्धाओं के शौर्य गीत गाते हैं। पर ऐतिहासिकता की दृष्टि से आल्हा खंड पृथ्वीराज रासो से कहीं भी सुधरा हुआ नहीं दिखता।

आल्हा खंड में एक विवाह और उससे कहीं न कहीं संबंधित एक अपहरण और एक युद्ध, बात बात पर ये तीन प्रकार की घटनाएँ गुच्छों में थोड़े अलग-अलग संदर्भ में दोहराती गई हैं।

दोनों आख्यानों (आल्हा खंड व पृथ्वीराज रासो) का संयुक्त कथानक इस प्रकार है कि जेजाकभुक्ति अभियान में अनेक स्थानों पर पृथ्वीराज का सैन्य प्रतिरोध हुआ। कहीं छिटपुट झड़पें तो कहीं बड़े युद्ध। ऐसे ही बेतवा नदी के पास लड़े गए एक घोर और दोनों ओर से संहारक युद्ध के बाद पृथ्वीराज ने महोबा पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में परमार्दि चंदेल की सहायता जयचंद्र गहड़वाल की सेना ने भी की, पर युद्ध-लीला उदल बनाफर सहित अनेक योद्धाओं को लील गई। महोबा से जीत कर चौहान सेना केन नदी के पास पहुँची तो दूसरी ओर से एक के बाद एक पराजय देखते जेजाकभुक्ति के राजा परमार्दि की साँसें फूल गई और वो कलिंजर दुर्ग में जा बैठे। सेना का एक भाग दुर्ग के घेरे पर छोड़ पृथ्वीराज जेजाकभुक्ति के बाकी क्षेत्रों पर धावे मारने निकल पड़े। अंत में चंदेल राजा को विवश होकर पृथ्वीराज से संधि करनी पड़ी। संधि अनुसार दशार्ण नदी के आसपास यानी पश्चिमी भूभाग जिसमें महोबा भी था चौहान राजा को प्राप्त हुए। पृथ्वीराज यह नया क्षेत्र अपने अधीनस्थ ढूंढाड़/दौसा के सामंत प्रद्युम्न/पज्जूण कछवाहा को देकर लौट गए। पर स्थानीय स्मृतियाँ इस सामंत का नाम कुन्डारगढ़ के क्षेत्र/खेत सिंह खंगार (खंगारोत उपनाम से सम्बन्धित नहीं) बताती हैं[7]। इसके बाद आख्यान भिन्न-भिन्न प्रकार से राजा परमार्दि चंदेल को मंच से ओझल करते हैं जैसे कि संन्यास ले लेना, नदी में डूब प्राण देना आदि।

आल्हा खंड तो 20-30 वर्ष की आयु में एक क्षत्रिय की परम बलिवेदी पर चढ़ने वाले पृथ्वीराज के हाथों उनकी पुत्री बेला का विवाह और गौना भी करवा देता है। पर दोहराना होगा कि इसमें लोकगायन के लिए तथ्य और कल्पना के झोल से बने आख्यानों का क्या दोष। प्रश्न तो उन लोगों पर उठना चाहिए जो ऐसे साहित्य को उसके यथोचित स्थान से उठाकर बलपूर्वक इतिहास के मंच पर थोप आते हैं।

अगले अंक में इस खिचड़ी में से कुछ इतिहास निकालने का प्रयत्न करेंगे...।

उद्धरण : 1. खरतरगच्छ वृहद्गुर्वावली, सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृष्ठ 19, 2. दिल्लीपति पृथ्वीराज चौहान और उनका युग- विंध्यराज चौहान, पृष्ठ 159, 3. खरतरगख्छ वृहद्गुर्वावली, सिंघी जैन ग्रंथमाला, पृष्ठ 28, 4. वही, पृष्ठ 25, 5. वही, पृष्ठ 32-34, 6. आल्हा, ऊदल नाम के दो बनाफर योद्धा भाइयों का यशगान करता आरम्भिक हिन्दी का काव्य, 7. पुंडीर और खंगार दोनों समुदायों को उत्तर मध्यकाल का भाट साहित्य पृथ्वीराज चौहान से क्रमशः पंजाब और मध्यप्रदेश में जोड़ता है। इनकी भूमिका पृथ्वीराज के गोरी और चन्देलों से हुए टकराव में बताई गयी है। पर यहीं से तथ्य ओझल होने लगते हैं। भाट साहित्य में व्यक्त इस जुड़ाव की किसी समकालीन स्रोत में पुष्टि नहीं हो पाती। अतएव इनकी पृथ्वीराज के संदर्भ में ऐतिहासिक भूमिका पर ठोस रूप से फिलहाल अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

गतांक से आगे

यदुवंशी करौली का इतिहास

– राव शिवराजपाल सिंह इनायती

''हिज हाईनेस महाराजाधिराज सर भंवर पाल देव बहादुर चंद्र भाल, जी सी आई इ।''

महाराजा अर्जुन पाल देव बहादुर ने उनकी मृत्यु के बाद गद्दीनशीनी को लेकर कोई विवाद नहीं हो, इसलिए उनके वारिस का नाम पॉलिटिकल एजेंट और गवर्नर जनरल को पहले ही भेज दिया था। उनके द्वारा पॉलिटिकल एजेंट को दी गई सूचना के आधार पर हाड़ोती के तत्कालीन राव भंवर पाल जी का ईस्वी सन् 1886, 14 अगस्त को करौली की गद्दी पर राजतिलक हुआ। इनके समय में भी करौली के महाराजा को 17 तोपों की सलामी दी जाती थी। इनका जन्म 24 फरवरी, 1864 को हुआ था, महाराजा को शिक्षा के लिए अजमेर स्थिति मेयो कॉलेज भेजा गया लेकिन राजपरिवार की महिलाओं के विशेष लाड़ दुलार के चलते वहाँ शिक्षा पूरी नहीं कर पाए और कुछ ही समय बाद वापस भी बुला लिए गये। भंवर पाल जी के राजा बनने के बाद हाड़ोती की गद्दी पर महाराजा के चचेरे भाई भोमपाल जी को गद्दी नशीन किया गया।

महाराजा भंवर पाल जी कसरत और कुश्ती के बहुत शौकीन थे और उसी के चलते करौली के महलों में बहुत ही शानदार अखाड़ा भी था जहाँ वे अपने चचेरे भाई राव भोम पाल जी के साथ कसरत और कुश्ती की जोर आजमाइश किया करते थे। कुश्ती के अखाड़े की मिट्टी को इस तरह से तैयार किया गया था कि आज लगभग एक सौ पैंतीस वर्ष बाद भी उस मिट्टी में पैर रखने पर ऐसा महसूस होता है जैसे रुई के फाहे पर पैर रखा हो। भंवर पाल जी बाघ पालने के लिए जगत प्रसिद्ध हुए हैं, इन्होंने दो बाघ पाले थे जो दरबार में महाराजा साहब के दोनों ओर बैठे रहते थे। दिल्ली दरबार में भी महाराजा उनको साथ लेकर गए, जहाँ पर डांग के शेरों वाले राजा के नाम से मशहूर हुए। यहाँ तक कि जिस हाथी पर महाराजा बैठते थे वह भी इस तरह से शिक्षित किया हुआ था कि उन बाघों के महाराजा के साथ ऊपर हौदे पर बैठने से विचलित नहीं होता था।

महाराजा बहुत अच्छे साहित्यानुरागी भी थे, मौजनाथ जी के अनन्य शिष्य थे, उन्होंने अपने लगभग सारे ही भक्ति पदों में मौजनाथ जी का उल्लेख करते हुए समर्पित किए हैं, जिनका काव्य प्रबंध भी प्रकाशित हुआ है। उनकी रचित होरी आज भी वसंतोत्सव से होली तक करौली में मदन मोहन जी मंदिर में और सामान्य जनों में बड़े भक्ति भाव और श्रद्धा से गाए जाते हैं।

महाराजा माता कैला देवी के अनन्य भक्त थे, जहाँ प्रति मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी को दर्शन के लिए पधारते थे। एक बार बहुत अधिक बारिश के कारण नदियाँ पूर आई हुई थीं और हाथी भी नदी की धारा में उतरने में आना-कानी करने लगा, तब ही भद्रावती नदी पर और कैला देवी में काली सिल नदियों पर पुल बनवाए गए जो आज भी मजबूती से खड़े हैं और काम में आ रहे हैं। भंवर पाल जी ने कैला देवी में भी बहुत सारे निर्माण कार्य करवाए जिनमें बड़ी धर्मशाला अपने शिल्प कला के लिए, तथा दुर्गा कुंड यात्रियों के पानी की सुविधा के लिये उल्लेखनीय और दर्शनीय है। साथ ही कुंड का भी

निर्माण बहुत उपयोगी था। बड़ी धर्मशाला विशाल भवन है जो उनकी मृत्यु के बाद ही पूरा हुआ जिसे बाद में तत्कालीन महाराजा भौम पाल जी और तत्कालीन महाराज कुमार श्री गणेश पाल साहब ने पूजा अनुष्ठान के साथ लोकार्पित किया।

महाराजा साहब के अपने चचेरे भाई राव भौम पाल जी के साथ बहुत ही प्रेमपूर्ण संबंध थे, लेकिन बाद में चिमन सिंह के बढ़ते दखल की वजह से और चिमन सिंह द्वारा राव भौम पाल जी के विरुद्ध महाराजा साहब के लगातार कान भरने से दूरियाँ बढ़ती गई। परिणामस्वरूप महाराजा भंवर पाल जी ने राव भौम पाल जी को खूबनगर की गढ़ी में छह महीने तक नजर बंद रखा। इस कृत्य के खिलाफ करौली के मुख्य ठिकानेदार हुए और अन्यों को भी यह नागवार गुजरा और राजपूताना के पॉलिटिकल एजेंट को शिकायत की गई। पॉलिटिकल एजेंट ने शिकायत की जांच कराई, जो सही पाई गई, तब राव भौम पाल जी रिहा हुए। चिमन सिंह वाला प्रकरण भी बहुत ही चर्चित रहा है जिसे अगले अंक में विस्तार से लिखा जाएगा।

महाराजा भंवर पाल जी के समय में प्रशासन में भी बहुत सुधार किए गए, जिनमें एक अंग्रेज अधिकारी को जमीनों के बंदोबस्त के लिए नियुक्त किया गया था। न्याय व्यवस्था इतनी त्वरित थी कि जिसकी आज की न्याय व्यवस्था से न तुलना की जा सकती है ना ही कल्पना की जा सकती है। ईस्वी सन् 1904-05 में आए लगभग चार सौ पचास से अधिक मामलों में से वर्ष के अन्त में केवल 13 मामले अनिर्णीत रहे। अपराधियों के फिंगर प्रिन्ट रखने के लिए उस समय भी एक अलग महकमा था, जहाँ अपराधी साबित होते ही उसके अंगुलियों की छाप ली जाती थी और उनको भविष्य के संदर्भ के लिए सुरक्षित रखे जाते थे। इसी तरह जैसे आज एक देश दूसरे देशों से प्रत्यर्पण संधि करता है वैसे ही महाराजा भंवर पाल जी के समय भी आसपास के राज्यों ग्वालियर, भरतपुर, जयपुर और कोटा से अपराधियों के लिए प्रत्यार्पण संधि थी, जिसमें वर्ष 2004-05 में आसपास के राज्यों द्वारा पचास अपराधियों की माँग की गई थी जिसमें से चालीस अपराधियों को प्रत्यर्पित किया गया।

महाराजा साहब प्रतिवर्ष अपने तहसीलों में कैंप करते थे, जहाँ वह एक सप्ताह से लेकर एक पखवाड़े तक रुका करते थे। कैंप के दौरान वहाँ उस क्षेत्र में आए सभी मामले वहीं हाथों हाथ निस्तारित कर दिए जाते थे। इससे सामान्य जन न्याय के लिए करौली तक नहीं आकर न्याय ही उनके द्वार पर आता था, जो आज भी अनुकरणीय है। **(क्रमशः)**

करनी पुरुषार्थ का ही दूसरा नाम है। पुरुषार्थ में मन का बल, आत्मिक शक्ति और काया का परिश्रम दोनों का योग है। यदि मन का बल कायिक श्रम के साथ नहीं है तो पुरुषार्थ निष्फल हो जायेगा। मन, वचन, काया के अद्‌भुत सामंजस्य से जब व्यक्ति का मनोबल बढता है तो वह भीषण संघर्ष की परिस्थितियों में कुन्दन-सा बनकर निकलता है। उसके हाथ विजयश्री लगती है। उसका मनोबल उसे ऐसा साहस देता है कि भारी मुकाबले के समक्ष भी वह पराजित नहीं होता।

- राजेन्द्र शर्मा

गतांक से आगे

महान क्रान्तिकारी राव गोपालसिंह खरवा

– भँवरसिंह मांडासी

विदेशी वस्त्रों की होली :– खरवा उस समय राष्ट्रीयता का गढ़ बना हुआ था। देश प्रेम की भावना वहाँ के जनमानस में समुद्र की लहरों की भाँति हिलोरें ले रही थी। राठी जी के बार-बार खरवा आने और उनसे सुपरिचित हो जाने से वहाँ के महाजनों में भी देश के प्रति समर्पित भावना का उदय होने लगा था। 14 मई, 1907 ई. को खरवा के महाजनों और दुकानदारों ने अपनी देशभक्ति का जबरदस्त परिचय दिया। उन्होंने उस दिन से विलायती खाण्ड का बेचना बन्द कर दिया और विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। सभी ने स्वदेशी वस्त्र पहनने की शपथ ली। उनके इस कार्य में गाँव की जनता के प्रत्येक वर्ग ने भाग लिया (मुणोल भूरालाल द्वारा लिखित राव गोपालसिंह की दैनिक डायरी के अंश) –

भारत धर्म महामण्डल :– ''भारत धर्म महामण्डल'' के संस्थापक स्वामी ज्ञानानन्द हिन्दू धर्म शास्त्र के अध्येता विद्वान एवं धर्म विषयक तत्त्वों के मर्मज्ञ पंडित के रूप में प्रसिद्ध थे। प्रगट में उस संस्था का उद्देश्य हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा और संवर्द्धन करना था। उक्त संस्था के विरोधियों ने संस्था को अंग्रेज परस्त बतलाकर कटु आलोचना की थी। जबकि उसके समर्थकों ने हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर सच्चे स्वदेश भक्तों का निर्माण करना बतलाया था। उक्त संस्था का उद्देश्य कुछ भी रहा हो, परन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि संस्था के सदस्यों में कुछ लोग ऐसे अवश्य थे, जिनकी देश-भक्ति और स्वाधीनता के लिए कुरबान होने की भावना दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक बढ़ी-चढ़ी थी और वे अपने अंग्रेज विरोधी कार्यों के लिए सुप्रसिद्ध थे। उनमें राव गोपालसिंह भी थे। उनके दबंग व्यक्तित्व एवं हिन्दू धर्म के प्रति समर्पित भावना के कारण भारत धर्म महामण्डल ने उन्हें ''धर्म-भूषण'' और बाद में ''भारत-भूषण'' की उपाधियों से अलंकृत किया था।

भारत धर्म महामण्डल का एक प्रतिनिधि-मण्डल वायसराय महोदय से मिलने कलकत्ता जाने वाला था। कई महीनों से ही उसकी तैयारियाँ हो रही थी। उक्त प्रतिनिधि मण्डल के साथ कलकत्ता जाने को राव गोपालसिंह को तैयार करने हेतु स्वामी ज्ञानानन्द अजमेर आए। फरीदकोट (पंजाब) राज्य के भूतपूर्व दीवान बरदाकान्त लाहेड़ी भी उनके साथ थे। उस समय राव साहब अजमेर में लोढ़ों की कोठी पर ठहरे हुए थे। 20 अगस्त, 1907 को स्वामी जी से मुलाकात हुई। राव गोपालसिंहजी ने कलकत्ता के डेप्यूटेशन में जाने की स्वीकृति दे दी। 6 मार्च, 1908 को कलकत्ता जाने के लिए राव साहब खरवा से अजमेर आए और 8 मार्च को कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया। प्रतिनिधि-मण्डल में स्वामी ज्ञानानन्द जी के सिवाय जो सदस्यगण शामिल थे, उनमें से कुछ नाम इस प्रकार थे- महाराजा साहब दरभंगा, शाहपुरा (मेवाड़) के राजकुमार उम्मेदसिंह, श्री बरदाकान्त लाहोड़ी, भूतपूर्व दीवान फरीदकोट, रावगोपालसिंह खरवा (अजमेर), महाराज किशनगढ़ की तरफ से ढ़सूक ठा. रघुनाथसिंह, कोटड़ा (मालवा) के ठा. भगवतसिंह। उस समय लार्ड मिन्टो भारत के वायसराय पद पर आसीन थे।

कलकत्ता पहुँचने पर प्रतिनिधि-दल म.नं. 160 बड़ा बाजार में ठहरा एवं 10 मार्च, 1908 को वायसराय से भेंट हुई। वार्ता सद्भावनापूर्ण सम्पन्न हुई।

प्रतिनिधि-मण्डल के कलकत्ता पहुँचने के दूसरे ही दिन बंगाल के ख्याति नाम देशभक्त श्री विपिन चन्द्र

पाल जेल से मुक्त होकर बाहर आए थे। 10 मार्च को प्रात: प्रतिनिधि-दल वायसराय से मिला और उसी शाम को श्री विपिन चन्द्र पाल के स्वागतार्थ बंगाल की जनता का विशाल जन-समूह हावड़ा रेल्वे स्टेशन पर एकत्रित हुआ। प्रतिनिधि-मण्डल से अलग होकर राव गोपालसिंह उस जुलूस में शामिल हुए। मोड़सिंह भवानीपुरा व मोड़सिंह पुरोहित दो विश्वस्त व्यक्ति उनके साथ थे। प्रतिनिधि-मण्डल दो दिन बाद ही कलकत्ता से प्रस्थान कर गया। राव गोपालसिंह श्री अरविन्द घोष के आग्रह पर कलकत्ता ही रूक गये। कमरा नं. 160 बड़ा बाजार से स्थानान्तरित करके उन्हें माणिक तल्ला स्थित राजा मलिक के मकान में ठहराया गया। क्रान्ति का संदेशवाहक ''वन्दे मातरम्'' नामक समाचार-पत्र वहीं से प्रकाशित होता था। क्रान्तिकारियों की गुप्त रात्रि बैठकें वहीं सम्पन्न होती थी। अरविन्द घोष ने जो अपने ब्यावर आगमन के समय से ही राव गोपालसिंह से परिचित थे, बंगाल के क्रान्तिकारियों से राव गोपालसिंह का परिचय कराया। ''वन्दे मातरम्', 'युगान्तर', 'संध्या' और 'अमृत बाजार पत्रिका' के सम्पादकगण जो सभी छद्म क्रान्तिकारी थे, राव गोपालसिंह से मिलकर अति प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन सबके आग्रह पर कलकत्ता के नेशनल कॉलेज में राव गोपालसिंह का भाषण हुआ। बंगाल के क्रान्तिकारी युवक राजस्थान की वीरता के संदर्भ में उनका जोशीला भाषण सुनकर बड़े प्रभावित हुए। अरविन्द घोष ने उपस्थित लोगों को राव गोपालसिंह का परिचय राजपूताने का एक राठौड़ वीर बतलाते हुए दिया। उक्त सभा-स्थल से ही अंग्रेजों का खुफिया पुलिस दल उनकी निगरानी रखने लगा। उनके कलकत्ता से प्रस्थान करने पर अजमेर के गुप्तचर विभाग को भी सतर्क कर दिया गया।

इसी सभा में एक पश्चिमी बंगाल (जो अब बंगलादेश है) में जन्मा युवक भी उपस्थित था। इस युवक को बाद में क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने के कारण अंग्रेज सरकार ने बंगाल से निष्कासित कर दिया था। बंगाल के क्रान्तिकारी नेताओं ने इसे राजपूताने के अजमेर मेरवाड़ा राज्य में स्थित खरवा ग्राम में जाकर राव गोपालसिंह के पास आश्रय लेने की सलाह दी। इस युवक ने खरवा में आकर अपना नाम कुमारानन्द रखा व कई वर्षों तक खरवा व समीपवर्ती ग्रामों में छिपकर गतिविधियाँ चलाता रहा। बाद में ब्यावर चला गया जहाँ वह सुविख्यात ट्रेड यूनियन व कम्युनिस्ट पार्टी का नेता स्वामी कुमारानन्द के नाम से विख्यात हुआ।

कलकत्ता में राव गोपालसिंह का भाषण सुना, उस समय कुमारानन्द की आयु मात्र 16 वर्ष थी। यह युवक राव गोपालसिंह के भाषण से इतना प्रभावित हुआ कि राजस्थान आने पर वह उस व्यक्ति की खोज करता रहा जिसका परिचय अरविन्द घोष ने 'राजपूताने का वीर राठौड़' कहकर दिया था। इसी वीर राठौड़ के पास रहकर भी स्वामी कुमारानन्द यह नहीं पहचान पाया कि राव गोपालसिंह खरवा ही वह व्यक्ति था जिनका भाषण कलकत्ता की सभा में उसने सुना था।

सवा माह कलकत्ता रहने के पश्चात् 20 अप्रैल, 1908 को राव गोपालसिंह खरवा लौट आए। उनके खरवा पहुँचने के आठ दिन (28 अप्रैल) पश्चात् ही अरविन्द घोष सरकार विरोधी आपत्तिजनक कार्यवाइयों के कारण गिरफ्तार कर लिए गए।

सन् 1908 से 1915 ई. तक का सात वर्ष का समय राव गोपालसिंह द्वारा देश की स्वतंत्रता के निमित्त किए गए प्रगट और अप्रगट क्रान्तिकारी कार्यों का इतिहास रहा है। सात वर्ष के उक्त कालखण्ड में घटित राजनैतिक घटनाओं का उल्लेख करने से पूर्व राजस्थान के राजनैतिक रंग-मंच के तत्कालीन अन्य प्रमुख पात्रों और नेताओं के संदर्भ में भी संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर देना सामयिक एवं विषयबद्ध होगा, जिससे आगे के घटनाक्रम और तथ्यों को समझने में पाठकों को सहायता मिलेगी। **(क्रमश:)**

विचार सरिता

(चतुसप्रति लहरी)

– विचारक

स्वतंत्रता मनुष्य का स्वभाव है। बन्धन या परतंत्रता वह कभी नहीं चाहता क्योंकि परतंत्रता ही सर्व दुःखों का मूल है। मानस में तुलसीदासजी लिखते हैं-**पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।** अर्थात् पराधीन व्यक्ति को सपने में भी सुख नहीं मिलता। सपना भी वह देखेगा तो स्वर्ग का नहीं नरक का ही स्वप्न देखेगा। जहाँ यातनाएँ ही यातनाएँ मिल रही हो, ऐसे दुःख से वह सदैव दुःखी रहता है। यह दीनता या परतंत्रता उसकी वास्तविक नहीं है। वास्तव में तो हमारा स्वरूप सुख रूप व आनन्दरूप है, लेकिन आरोपित मान्यताओं के कारण यह जीव दुःख-कूप में गिर रहा है।

वासना, कामना, तृष्णा, अहंकार आदि से ही मनुष्य बन्धनों का निर्माण कर लेता है। इन बन्धनों के कारण ही विषयों की गुलामी उसे सहन करनी पड़ती है। इन्हीं से उसे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद का अनुभव होता है। इन्हीं से उसके कर्म बन्धन बनते हैं। आदमी को बान्धने की ताकत कर्म में नहीं है। कर्म के पीछे उसकी जो वासना और कामना है वही व्यक्ति को बन्धन में डालती है। जिसे वह अनेक जन्मों तक भोगता ही रहता है।

आत्मज्ञान के बिना इन बन्धनों से छुटकारा नहीं हो सकता। ज्ञानी ही इस तत्व को जानकर सर्व बन्धनों से मुक्त होकर परमसुख में स्थित हो जाता है। बन्धन-रहित हो जाना ही परमस्वतंत्रता है। यही मुक्ति है। इस विषय में विचार सागर में निश्चलदास जी महाराज लिखते हैं कि –

दीनता को त्याग नर, आपनो स्वरूप देख
तूं तो शुद्ध ब्रह्म अज, दृश्य को प्रकाशी है।
आपने अज्ञान तैं जगत सब तूं ही रचै
सर्व को संहार कर, आप अविनाशी है।।
मिथ्या प्रपञ्च देखि, दुःख जानि आनि हिये
देवन को देव तूं तो, सब सुख राशि है।
जीव जग ईश होय, माया से प्रभासे तूं ही
जैसे रजु सांप, सीपी रूपा व्हे प्रभावी है।।

उपरोक्त सवैया के यहाँ लेखन का एक ही आशय है कि हमने अपनी मिथ्या आरोपित मान्यताओं को महत्त्व देकर बड़ी भारी भूल कर ली और अपने ही अज्ञान के कारण हम ब्रह्मभाव को भूलकर जीवभाव को महत्त्व देने लग गए। इसी कारण देह प्रपञ्च को ही अपना स्वरूप मानकर लक्ष चौरासी योनियों में जन्म-मरण की भ्रान्ति स्वरूप यह जीव दुःख पा रहा है।

जिस ज्ञानी की स्पृहा शान्त हो गई कोई वासना नहीं रही, जो कल्पना रहित है, बन्धन-रहित हो गया तथा जिसे सृष्टि में एकत्व का बोध हो गया वह मुक्त-चित्त वाला धीर पुरुष बड़े-बड़े भोगों के साथ बालवत् क्रीड़ा करते हुए भी उनसे अलिप्त, अछूता रहता है। वह सांसारिक भोगों को क्रीड़ा की भाँति, खेल की भाँति, नाटकवत् तटस्थ होकर साक्षीभाव से भोगता है। ज्ञानी का व्यवहार प्रारब्धाधीन होता है। उसमें उसकी कोई इच्छा या वासना नहीं होती। वह चाहे राजसिंहासन पर आरूढ़ रहे या जंगल यथा कंदराओं में रहे। उसके वहाँ रहने में कोई आग्रह नहीं होता उस सबका हेतु एकमात्र प्रारब्ध ही है।

जिसे भोगों को भोगने या उन्हें त्यागकर जंगल में चले जाने का आग्रह होता है, जो सब कुछ नियम-संयम में बन्धकर कार्य करता है, जो सिद्धान्तों,

(शेष पृष्ठ 30 पर)

संघ की सामूहिक संस्कारमयी मनोवैज्ञानिक कार्य प्रणाली

– गगन कँवर आकोड़ा

श्री क्षत्रिय युवक संघ सामूहिक संस्कारमयी मनोवैज्ञानिक कार्य प्रणाली है। सामूहिक रूप में संस्कार निर्माण का कार्य किया जाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ समाज के लिए है, समाज का है और समाज का ही कार्य करता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमें हमारे कर्तव्य का ज्ञान करवाता है। कर्तव्य के अनुकूल संस्कार निर्माण का कार्य संघ अपने विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से सम्पन्न करता है। संस्कार निर्माण के लिए प्रमुख अंग है शाखा। शाखा में दैनिक अभ्यास करवाया जाता है। मैदानी शाखा में खेल खिलाये जाते हैं जिनके पीछे छिपे गुणों का निरन्तर अभ्यास होता है। शाखा में खेलों के अलावा सहगीत होते हैं, चर्चा होती है। चर्चा खेलों पर होती है, सहगीत की किसी पंक्ति पर होती है, अथवा संघ साहित्य की किसी पुस्तक के किसी अवतरण पर होती है। सबको बोलने का अवसर मिलता है। संघ की शाखा में निरन्तरता एवं नियमितता आवश्यक है। इसी से कराया गया अभ्यास हमारे जीवन में उतरता है।

शाखा में हम आते हैं तो दिन के 24 घण्टे में से एक घण्टा शाखा में रहते हैं, पर बाकी 23 घण्टे ऐसे वातावरण में रहते हैं जो शाखा के वातावरण के अनुकूल नहीं होता। इसलिए शिविरों का आयोजन किया जाता है जिसमें पूरे दिन संघमय वातावरण बना रहता है जिससे संघ कार्य का प्रभाव गहरा बन पाता है। शिविर चार दिन, सात दिन अथवा ग्यारह दिनों के होते हैं अत: शाखा के अलावा अधिक से अधिक शिविर भी करना आवश्यक है। जिन अच्छी आदतों का अभ्यास करवाया जाता है वे धीरे-धीरे हमारे संस्कार बन जाते हैं।

लोक संग्रह का कार्य भी संघ प्रणाली का महत्त्वपूर्ण अंग है। लोक संग्रह केवल लोक को इकट्ठा करना ही नहीं होता, लोक को संघ के सम्पर्क (शाखा व शिविरों में) लाकर उनको भी वैसा ही बनाना है जैसा संघ चाहता है और संघ चाहता है कि हमारा जीवन क्षत्रियोचित संस्कारों से ओतप्रोत हो। इसलिए क्षत्रियोचित संस्कारों का निर्माण कार्य निरंतर चलता रहता है। संघ हमें एक व्यवस्था में रहना सिखाता है। अनुशासन में रहकर हमारे दायित्व के प्रति सजगता से संघर्षरत रहना सिखाता है। दृढ़ता, ईमानदारी, कर्तव्य पालन आदि-आदि जो संघ हमें सिखाता है, वह अन्यत्र कहीं सीखने को नहीं मिलता।

हमारी दिन भर की क्रिया को नियोजित करने के लिये संघ ने अष्ट सूत्री कार्यक्रम दिया है। 1. शुद्धि-शारीरिक शुद्धि, 2. संध्या-प्रतिदिन सुबह पूजा-पाठ, 3. श्रम-शारीरिक श्रम, 4. सेवा-अपने लिये नहीं, अन्य के लिये कार्य, श्रम, इत्यादि 5. स्वाध्याय-स्व का अध्ययन, उत्कृष्ट साहित्य पठन, 6. चिंतन-मनन-सुनी-पढी बात पर चिंतन करना, मनन करना, 7. मौन-कुछ समय के लिये बिल्कुल मौन रहें, साधारणतया भी अनावश्यक न बोलें, 8. समाधि-सोने से पूर्व बिस्तर पर बैठकर, नेत्र बन्द कर अन्तर यात्रा का प्रयास करें और फिर तुरन्त सो जाएँ। प्रतिदिन इन आठ सूत्रों के अनुसार चलने का प्रयास बना रहे।

व्यक्ति का अहंकार मूल रूप से व्यक्तिवाद का कारण है। अहंकार के कारण अनेक दुष्परिणाम भूतकाल में समाज भुगत चुका है। इसलिए अहंकार को समाप्त करना और उसे सामाजिक स्वाभिमान में परिवर्तित करना आवश्यक है, जिसके लिये खेलों, चर्चा, बौद्धिक के माध्यम से अहंकार को चोट पहुँचाकर उसे रूपान्तरित किया जाता है। संघ हमारे अन्दर पारिवारिक भाव जागृत कर सामाजिक भाव की ओर ले जाता है।

क्षत्रिय अर्थात् क्षय से त्राण करने वाला। जो अमृत होकर जीता है उसकी रक्षा और विष होकर जीने वालों का नाश। अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिए यह अभ्यास है जिसमें स्वधर्म पालन क्षात्रधर्म पालन की जागृति होती है। ऐसा अभ्यास अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। हमारे दोषों को दूर कर हम सच्चे क्षत्रिय इसी माध्यम से बन सकते हैं। सच्चा क्षत्रिय ही राष्ट्र की परिभाषा बन सकता है। क्षत्रिय तो मानव मात्र ही नहीं, प्राणी मात्र के लिए है। अपने कर्तव्य पालन के लिए हर प्रकार का त्याग करने को तत्पर रहता है। यहाँ तक कि अपने प्राण देकर भी अपना कर्तव्य निभाता है।

श्री क्षत्रिय युवक संघ ने बालिकाओं और महिलाओं के शिविर लगाने प्रारम्भ किए जो अत्यन्त आवश्यक था। इन शिविरों में एक आदर्श क्षत्राणी, एक आदर्श महिला का नारी धर्म क्या है, यह भली प्रकार समझाया जाता है। नारी अपने विभिन्न स्वरूपों में अपने दायित्व निभाती है, यथा-माँ, पत्नी, बहिन, बेटी आदि। सभी रूपों में नारी का दायित्व बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। माँ के रूप में तो उसे अत्यन्त गम्भीर उत्तरदायित्व निभाना होता है। 'माता निर्माता भवति'- अपनी सन्तान को आदर्श सन्तान बनाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण दायित्य माता ही निभाती है। उसके दायित्व में चूक होने से संतान संस्कारों से दूर हो जाती है। पत्नी के रूप में वह पति को पतन से बचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सहनशक्ति का तो वह मूर्त रूप है। पुरुष बड़ा है तो वह पिता के समान है, बराबर आयु का है तो भाई के समान है, उम्र में छोटा है तो वह पुत्र के समान है। पर-पुरुष के सामने आने पर नजर उसके पैरों पर ही रहे, अनजान पुरुष के साथ कभी न बैठे। इस प्रकार के संस्कार बालिकाओं में ढालना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि वे ही कल की माताएँ बनेगी और उन्हें सच्ची क्षत्राणी का दायित्व निभाना है। यही श्री क्षत्रिय युवक संघ कर रहा है।

वर्तमान समय में नारी के दूषण क्या हो सकते हैं और नारी के भूषण क्या होने चाहिए यह भी बालिका शिविरों में बताया जाता है। नारी के दूषण हैं- झगड़ा, निन्दा, भेदभाव, बेकार खर्च, अभिमान, दिखावा, मजाक, स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही, मोह, कुसंग, आलस्य और व्यभिचार। नारी के भूषण कोई सोने-चाँदी के आभूषण नहीं हैं, आदर्श नारी के भूषण हैं- लज्जा, विनय, संयम, संतोष, क्षमा, वीरता-धीरता, गंभीरता, क्षमता, सहिष्णुता, सुव्यवस्था, श्रमशीलता, निराभिमानता, मितव्ययीता, उदारता इत्यादि। इनका ज्ञान हमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

पृष्ठ 28 का शेष

विचार सरिता

मान्यताओं, परम्पराओं, रूढ़ियों के अनुसार चलता है ऐसा व्यक्ति मुक्त कैसे कहा जा सकता है, वह बन्धनग्रस्त ही है। ज्ञानी तो सभी प्रकार बन्धनों से मुक्त होकर केवल आत्मा में रमण करने वाला स्वच्छन्दचारी होता है। ज्ञानी का चित्त वासनामुक्त है, अत: उसे अब कुछ भी पाना शेष नहीं रह गया है। वह अपने आत्मानन्द की मस्ती में कभी पागलों जैसा व्यवहार करता है तो कभी बुद्धिमानों जैसा। लेकिन उस व्यवहारकाल में वह नि:स्पृहा ही होता है।

ऐसे अलमस्त फकीरों के सान्निध्य का लाभ जिन साधकों को मिल गया तो समझो वे निहाल हो गए। किसी पद या पदार्थ के मिलने से जो अपने को निहाल होना मानता है, यह उसकी क्षुद्र आकांक्षा है। ऐसे नश्वर पदार्थ को पाकर आज तक भी कोई निहाल नहीं हुआ। निहाल तो वह होता है जो अक्षय पद को पाकर फिर कभी कुछ पाने की कामना नहीं रखता वह वास्तव में निहाल होता है। गुप्तसागर के प्रारम्भ में ही एक दोहा है कि-

अस्ति भातिप्रिय सिन्धु में, नाम रूप जंजाल।
जिहिं लखि निज आत्म तत्व, व्हे तत्काल निहाल।।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

हृदय में सत्कार रखो

– भागीरथ सिंह लूणोल

एक बार की बात है, दूर एक रेगिस्तान में, एक गुलाब था जिसे अपनी सुंदरता पर बहुत अभिमान था। उसकी एकमात्र शिकायत थी कि एक बदसूरत कैक्टस उसके बगल में बढ़ रही थी।

हर दिन, सुंदर गुलाब कैक्टस का अपमान करता था और उसके अच्छे ना दिखने पर उसका मजाक उड़ाता था, जबकि कैक्टस चुप रहता था। आस-पास के अन्य सभी पौधों ने गुलाब को समझाने की कोशिश की।

एक दिन चिलचिलाती गर्मी में रेगिस्तान सूख गया, और पौधों के लिए पानी नहीं बचा। गुलाब जल्दी मुरझाने लगा। उसकी सुन्दर पंखुड़ियाँ सूख गई, अपना सुन्दर सा आकर्षण अब गुलाब खोने लगा।

कैक्टस की ओर देखते हुए, उसने देखा कि एक गौरेया पानी पीने के लिए अपनी चोंच को कैक्टस में डुबा रही है। अपने पिछले किए गए अपमान पर गुलाब ने कैक्टस से शर्मिंदगी से पूछा और मदद माँगी कि क्या उसे कुछ पानी मिल सकता है। दयालु कैक्टस आसानी से सहमत हो गया, उन दोनों को अत्यन्त गर्मी में, दोस्तों के रूप में मदद करने लगा।

जीवन में समय और स्थिति, किसी की भी बदल सकती है, अत: कभी किसी का अपमान ना करें एवं किसी को तुच्छ ना समझें।

जीवन में तन से खूबसूरत होना सब कुछ खूबसूरत होना नहीं। हमें हर प्रकार से खूबसूरत होना चाहिए। तन के साथ-साथ हमारा मन भी आकर्षित होना चाहिए और मन का आकर्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। जीवन में हर एक की अपनी खूबसूरती है, अगर हम किसी की खूबसूरती को पहचान ना सकें तो कम से कम उसका अपमान ना कीजिए।

जहाँ काम, आवे सुई, कहा करे तरवारि।

रहीम ने इस दोहे में बताया है कि हमें कभी भी बड़ी वस्तु की चाहत में छोटी वस्तु को फेंकना नहीं चाहिए, क्योंकि जो काम एक सुई कर सकती है वही काम एक तलवार नहीं कर सकती। अत: हर वस्तु का अपना अलग महत्त्व है। ठीक इसी प्रकार हमें किसी भी इंसान को छोटा नहीं समझना चाहिए।

हर एक का अपना महत्त्व है, उस महत्त्व को पहचानिए, सभी का आदर सम्मान कीजिए, अगर ऐसा नहीं कर सकते तो कम से कम अपमान ना कीजिए। इस धरती पर ईश्वर ने सभी को किसी ना किसी कार्य के लिए भेजा है, कहीं ना कहीं वह जरूरी है। अपने कार्यों से सभी की मदद करें और सभी का सम्मान करें, जिससे हमें कभी किसी की मदद की जरूरत पड़ी, तो हमें इस कहानी के, गुलाब की तरह शर्मिंदा ना होना पड़े।

कहते हैं सोच खूससूरत हो, तो सब खूबसूरत नजर आता है और देखने वालों की आँखों में सुंदरता होती है। तो वह सुंदरता हमें हमारे अंतर्मन में लाना अत्यन्त आवश्यक है।

हम किसी का एक क्षण में अपमान कर देते हैं, पर जिसका करते हैं उसे तब तक चैन नहीं मिलता, जब तक वह उस अपमान का कर्ज ना चुका दे।

जीवन में हर एक इंसान इस कहानी के कैक्टस पौधे की तरह दयालु नहीं होता है, याद रखिए कि जिस समय हम किसी का अपमान कर रहे होते हैं तो साथ ही साथ हम अपना भी सम्मान खो रहे होते हैं।

कुछ लोग जरूर सही समय का इंतजार करते हैं, कि कब अपने अपमान का बदला ले सकें, क्योंकि यह इंसान को अन्दर तक ठेस पहुँचाता है। अपमान करना इंसान के स्वभाव में होता है परन्तु सम्मान करना हमारे संस्कार में। संस्कारों की सही भाषा हमें जानने की आवश्यकता है और सम्मान करना उन संस्कारों में से एक है।

करो प्रशंसा जी भर के, करो अपमान अपना सोच समझ के,
अपना वह ऋण है, ब्याज सहित चुकता है, गरज-बरस के।

अपनी बात

प्रमाद से तात्पर्य है सोया हुआ होना। यदि यह पता चल जाए कि मैं सोया हुआ हूँ तो खोज शुरू हो जाती है अप्रमाद की। इस बात की समझ कि मैं सोया हुआ हूँ, आवश्यक है। वह जो नींद है उसका पहले बोध होना आवश्यक है और जिस दिन यह समझ में आ जाए कि मैं सोया हुआ हूँ तो फिर सुबह करीब है। क्योंकि पता चल जाता है तो नींद टूटने लग जाती है।

नींद तोड़ने का पहला सूत्र है, नींद को ठीक से पहचान लेना। अभी तो हम चलते हैं तो सोये हुए, मंदिर जाते हैं तो सोये हुए जाते हैं, माला-जप करने बैठते हैं तो सोये हुए, मित्रता करते हैं तो सोये हुए, शत्रुता करते हैं तो सोये हुए, संघ का दिया हुआ जो भी उत्तरदायित्व है वह भी सोते हुए ही निभाते हैं। सोये हुए व्यक्ति से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। नींद धर्म में नहीं ले जा सकती, नींद अधर्म में ही ले जाती है।

अगर कोई व्यक्ति चेतन मन में जाग जाये तो अचेतन में उतर जाता है। अचेतन में उतरने का सूत्र चेतन मन में जाग जाना है। जैसे हम नींद में जग जायें तो हम जागरण में उतर जाते हैं। चित्त-दशा फौरन बदल जाती है। एक व्यक्ति को हमने नींद में हिला दिया, वह जाग गया तो नींद गई और जागना शुरू हो गया। दूसरी चित्त-दशा शुरू हो गई। अगर हम स्वप्न में जाग जायें तो स्वप्न तत्काल टूट जाता है और हम स्वप्न से बाहर हो जाते हैं।

जागें कैसे? जितना हम अन्तर में नीचे गहरे उतरते हैं, उतने ही हम ऊपर उठते जाते हैं। जीवन का नियम ऐसा ही है, जैसा वृक्षों का नियम है। जड़ें जितनी उतरती हैं, वृक्ष ऊपर जाता है। साधना गहरी नीचे जाती है, सिद्धि ऊपर जाती है। जितनी गहरी जड़ें नीचे उतरने लगती हैं, उतना ही वृक्ष आकाश को छूने ऊपर बढने लगता है। जो फूल खिलते हैं आकाश में उनका आधार नीचे पाताल में गई जड़ों में होता है। साधना सदा नीचे ले जाएगी गहराइयों में और सिद्धि सदा ऊपर उपलब्ध होगी, ऊँचाइयों में।

साधना एक गहराई है और सिद्धि एक ऊँचाई है। अपने में ही जो नीचे उतरेगा वह अपने में ही ऊपर जाने की उपलब्धि को पाता जाता है। सीधे ऊपर जाने का उपाय नहीं है। सीधे तो नीचे जाना पड़ेगा। और प्रति बार जब कोई चेतन से अचेतन में जाता है तब अचानक पाता है कि ऊपर का भी एक दरवाजा खुल गया है, अतिचेतन का दरवाजा खुल गया है। समष्टिगत चेतन है, उसका दरवाजा खुल गया है। जितने गहरे उतरते हैं, उतने ही ऊँचे उठते जाते हैं। इसलिए गहराई की फिक्र करनी है, ऊँचाई तो उसका परिणाम है।

गहराई में उतरें कैसे? प्रश्न वैसा ही है जैसे कोई पूछे तैरना कैसे सीखें? तो यही कहा जाएगा कि तैरना प्रारम्भ करो। वह कहेगा तैरना जानता ही नहीं तो शुरू कैसे कर सकता हूँ। तैरना सिखाने वाला कहे कि नदी में उतरो तैरना सिखाता हूँ तब अगर सीखने वाला कहे कि तब तक पानी में नहीं उतरूँगा जब तक तैरना न सीख लूँ। उसका तर्क सही होगा पर सभी सही दिखाई पड़ने वाले तर्क जरूरी रूप से सत्य के निकट ले जाने वाले नहीं होते। पहले मुझे तैरना सिखा दें, फिर मैं पानी में उतरूँगा, यह तर्क युक्त लगता है। पर जब तक कोई पानी में ही नहीं उतरे तब तक तैरना सीख कैसे सकता है। पानी में उतरेंगे तभी तो तैरना सीख सकते हैं। यदि पानी में उतरने को राजी नहीं तो तैरना कैसे सिखाया जा सकता है। यह तर्क भी पूरी तरह सही है। परन्तु यह तर्क अस्तित्व के निकट है जबकि पहला तर्क सिर्फ विचार का तर्क है। विचार में बिल्कुल ठीक कहा जा रहा है कि बिना तैरना सीखे पानी में कैसे उतरूँ। लेकिन यह पता होना ही चाहिए कि पहली

(शेष पृष्ठ 34 पर)

शिविर सूचना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं -

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
01	मा.प्र.शि. (बालिका)	16.10.2022 से 21.10.2022	सिवाना (बाड़मेर)	कल्ला रायमलोत छात्रावास।
02	मा.प्र.शि. (बालक)	16.10.2022 से 22.10.2022	बापीणी (जोधपुर)	जोधपुर से ओसियाँ-बापीणी।
03	मा.प्र.शि. (बालक)	16.10.2022 से 22.10.2022	बालोतरा (बाड़मेर)	वीर दुर्गादास छात्रावास। बाड़मेर, जोधपुर, जालोर से पहुँचे।
04	मा.प्र.शि. (बालक)	17.10.2022 से 23.10.2022	बूचाराफार्म (जयपुर)	पावटा। सम्पर्क - श्री धूड़सिंह : 9694338466
05	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	18.10.2022 से 21.10.2022	सकानी (डूंगरपुर)	आसपुर।
06	प्रा.प्र.शि. (बालक)	19.10.2022 से 22.10.2022	बड़ली (अजमेर)	सुमेर कृषि फार्म बड़ली। (विजयनगर)
07	प्रा.प्र.शि. (बालक)	19.10.2022 से 22.07.2022	कोटड़ा (बांसवाड़ा	
08	प्रा.प्र.शि. (बालक)	26.10.2022 29.10.2022	हाथीतला (बाड़मेर)	बाड़मेर से धोरीमला NH68 पर, रणसी होटल से 2 कि.मी. दूर हाथीतला।
09	मा.प्र.शि. (बालक)	26.10.2022 से 1.11.2022	आसकी ढाणी (नागौर)	डीडवाना-सालासर रोड़ पर।
10	प्रा.प्र.शि. (बालक)	27.10.2022 से 30.10.2022	गलोट (प्रतापगढ़	
11	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	28.10.2022 से 31.10.2022	डीडवाना (नागौर)	शहर में।
12	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	28.10.2022 से 31.10.2022	चाकसू (जयपुर)	अपनत्व-फ्यूचर जोन एकेडमी, चाकसू। सम्पर्क- अर्जुनसिंह गोनिया-9828129675
13	प्रा.प्र.शि. (बालक)	28.10.2022 से 31.10.2022	हमीरा (जैसलमेर)	
14	मा.प्र.शि. (बालक)	28.10.2022 से 3.11.2022	धोलेरा (अहमदाबाद)	अहमदाबाद से भावनगर रूट पर।

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
15	मा.प्र.शि. (बालिका)	28.10.2022 से 3.11.2022	धंधूका (अहमदाबाद)	धोलेरा से 27 कि.मी. दूर।
16	प्रा.प्र.शि. (बालक)	05.11.2022 से 08.11.2022	झालरापाटन (झालावाड़)	आनन्द धाम नवलखा किला।
17	प्रा.प्र.शि. (बालिका)	5.11.2022 से 8.11.2022	कोटा	
18	प्रा.प्र.शि. (बालक)	6.11.2022 से 9.11.2022	कीता (जैसलमेर)	
19	प्रा.प्र.शि. (बालक)	11.11.2022 से 14.11.2022	फरीदाबाद (हरियाणा)	
20	प्रा.प्र.शि. (बालक)	17.11.2022 से 20.11.2022	जौनपुर (उ. प्रदेश)	
21	प्रा.प्र.शि. (बालक)	26.11.2022 से 28.11.2022	नैनावा (बनासकांठा)	(गुजरात)

दीपसिंह बेण्याकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख, श्री क्षत्रिय युवक संघ

पृष्ठ 32 का शेष

अपनी बात

बार जब कोई पानी में उतरता है तो बिना तैरना सीखे ही उतरता है। और बिना तैरना जाने, पानी में उतरने से ही तैरना सीखने की शुरुआत होती है। हाँ, पहले गहरे पानी में न उतरें, इतने पानी में उतरें कि डूब न जाएँ और उसमें तैर भी सकें। यहीं से शुरुआत करनी पड़ती है।

प्रारम्भ में परम जागरण की आकांक्षा नहीं की जा सकती। थोड़े से पानी में उतरना प्रारम्भ करें अर्थात् छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना शुरू करें। रास्ते पर चलते हैं तो होश पूर्वक चलें। रास्ते पर चलते लोगों को देखें तो उनमें से अनेक अपने से ही बातें करते चलते हैं। कोई हाथ हिला रहा है, किसी को जवाब दे रहा है जो वहाँ है ही नहीं। इसी तरह से लोग चल रहे हैं जो होशपूर्वक चलना नहीं, नीदं में चलना ही है। चल तो रहे हैं क्योंकि आदत बन गई है पर चल रहे हैं सोये हुए ही। इसी तरह जीवन में हम जो भी कर रहे हैं वह यंत्रवत करने की आदत बन गई है, अप्रमाद की स्थिति नहीं है। अत: छोटी-छोटी क्रियाओं में जागना प्रारम्भ करना पड़ेगा। रास्ते पर चल रहे हैं, खाना खा रहे हैं, स्नान कर रहे हैं, कपड़े पहन रहे हैं, जूते पहन रहे हैं, इन छोटी-छोटी क्रियाओं में जागें। शाखा में जा रहे हैं, चर्चा में सुन रहे हैं, चर्चा में बोल रहे हैं, संघ कार्य कर रहे हैं, इनको जरा होश पूर्वक करना शुरू करें। अन्तर की गहराइयों में उतरेंगे तो क्रोध, घृणा, अभद्रता आदि के लिए जागना प्रारम्भ करें। यह चलता रहा तो प्रमाद टूटेगा। नींद टूटेगी। संघ की संस्कारमयी कार्य प्रणाली में हम चल तो रहे हैं पर होश को जागृत कर लें तो साधना निखरेगी।

-: हार्दिक बधाई :-

विक्रम सिंह
पुत्र श्री राणीदान सिंह जी
Physical Education Teacher
DSSSB
(Delhi Subordinance Services Selection Board)
रामदेवरा (जैसलमेर)

गोपाल कृष्ण सिंह अवाय
पुत्र श्री गणपत सिंह जी
Computer Instructor
गज भवन, अवाय
(जैसलमेर)

भोम सिंह
पुत्र श्री नरपत सिंह
Railway Technician
गांव शिवसर, लवारण
तह. सेखला (जोधपुर)

-: शुभेच्छु :-

चन्द्रवीर सिंह देणोक, हरिसिंह ढेलाणा, अमर सिंह गोपालसर,
करणीपाल सिंह गांवड़ी, रूपसिंह परेऊ, चैनसिंह साथिन,
पदम सिंह ओसिया, गेनसिंह चान्दनी, जसवंत सिंह सेतरावा,
नाथूसिंह बालेसर सता, नरपत सिंह रामदेरिया, उत्तमसिंह नाहरसिंह नगर,
दिलीप सिंह गड़ा, जसवंत सिंह चाबा, लूण करण सिंह तेना,
भवानी सिंह पीलवा, श्याम सिंह मालूंगा, दातार सिंह दुगोली,
गोपाल सिंह मुंगेरिया, मदन सिंह आसकन्द्रा,
लक्ष्मण सिंह गुड़ानाल

दीपावली के पावन पर्व पर सभी
स्नेहिल बंधुओं को हार्दिक शुभकामनाएं।।

IAS / RAS

तैयारी करने का राजस्थान का सर्वश्रेष्ठ संस्थान

स्प्रिंग बोर्ड

Spring Board

Springboard Academy,
Main Riddi Siddi Choraha,
Opposite Bank of Baroda,
Gopalpura, Bypass Jaipur

Website : www.springboardindia.org

अक्टूबर, सन् 2022
वर्ष : 59, अंक : 10

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जेन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह